प्रकाशक—

आर० आर० बेरी

२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

मुद्रक—

बाबू नरसिंहदास अग्रवाल।

'लक्ष्मी प्रिंटिंग वर्क्स'

२५०, अपरचितपुर रोड, कलकत्ता

स्वर्गीय महामान्य बबुआ राजा ठाकुर,

"बिश्वेश्वरवख्शसिंहजी"
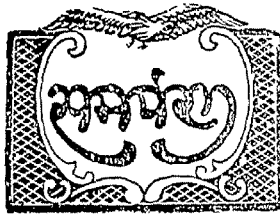
स्वर्गीय महामान्य बबुआ राजा ठाकुर

विश्वेश्वर बख्श सिंह जी

रईस राजामऊ, जि० रायबरेली

पूज्य ज्येष्ठ भ्राता !

आप अपनी अल्पायुमें ही अपनी प्रिय पत्नी, आत्मीय जन और राज्यकी सारी प्रजाको रुलाकर चल बसे थे, किन्तु जीवन-संग्राममें अपनी नीति निपुणता, राज्य शासन कुशलता, और उपकार-परायणताका जो अप्रतिम परिचय दिया था वह भारत के राजकुमारोंके लिये आदर्श एवं अनुकरणीय है। इन्हीं गुणोंपर मुग्ध हो वियोग-व्यथाके अधिक कालोपरांत राष्ट्र भाषा हिन्दीमें स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी मेरी यह तुच्छ रचना "भारतीय वीरांगनाएं" (प्रथम भाग) आपकी स्वर्गीय आत्मा को, सादर समर्पित है।

आपका एकान्त प्रेमी,

'किशोर'

प्रेमोपहार

श्रीमान्

दो शब्द

पाठक और पाठिकाओ,

जगदाधार जगन्नियन्ताकी असीम अनुकम्पा एवं अपने मित्रों और गुरुजनोंके शुभाशीर्वादसे आज मैं अपनी कृतिमालाका पञ्चम-पुष्प "भारतीय वीरांगनाएँ" (प्रथम भाग) लेकर उपस्थित हो रहा हूँ। इस भागमें उन पञ्च महासतियों का चारु चरित्र चित्रित किया गया है, जिन्होंने अपने अखण्ड पातिव्रतसे आर्यावर्त्तका मुखोज्वल किया था ; जिनके आदर्श अनुकरणीय चरित्र-बल के समक्ष निर्दय-से-निर्दय को भी नत मस्तक-होना पडा था। जिन्होंने अपने पावन चरित्रसे असम्भवको भी सम्भव कर दिखाया था। उन्हीं जगद्वन्द्या सतीत्व-व्रतधारिणी अनुसूया, सीता, सावित्री, दमयन्ती और सती-पार्वतीका चरित्र चित्रित किया गया है। पौराणिक काल से लेकर आजतक की असंख्य पतिव्रताओं में इन पञ्च महासतियोंका स्थान सर्वोच्च माना गया है। इनकी समता करने वाली दूसरी सती इस धराधामपर अवतीर्ण नहीं हुई।

इस पुस्तकका संशोधन और परिवर्द्धन प्रेमास्पद बावू शिव-पूजनजी सहाय (हिन्दी-भूषण) ने किया है ; जिसके लिये उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

रामसिंह वर्म्मा 'किशोर'

प्रकाशकका वक्तव्य ।

इस जागृतिके समयमें देश उन्नतिका उपासक है। समाज उन्नतिकी ओर अग्रसर हो रहा है। जनता सभ्य श्रेणीमें स्थान पानेके लिये उत्सुक है। इस देशकी स्त्री जाति जो अभीतक अज्ञानके गर्तमें पड़ी मृत-प्राय· हो रही थी, अब पुन. जीवन लाभकी चेष्टा कर रही है। ऐसे समय स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकोंका प्रकाशित होना परमावश्यक है। इसी उद्देश्य को सम्मुख रख हमने "आदर्श-रमणी-रत्न-माला" नामक सचित्र सिरीजके अन्दर उन सती शिरोमणि वीर रमणियोंका चारु चरित्र चित्रित कराकर प्रकाशित करना आरम्भ किया है, जिन्होंने अपने अखण्ड पातिव्रत, उद्यम चरित्र, निस्वार्थ, सेवा और अलौकिक, कार्यसे इस देशके पुराण और इतिहासका मुखोज्वल किया था, जिन्होंने पति सेवा, देश-सेवा, समाज-सेवा और स्त्रीजाति की उन्नति के लिये अपने सम्पूर्ण जीवन को बलिदान कर दिया था।

"भारतीय वीरांगनाए" रत्न मालाकी दसवीं पुस्तक है। इस पुस्तकको लेखकने तीन भागोंमें विभक्त किया है। तीनों भागोंके आरम्भमें लेखक-ने उपक्रमणिकाके रूपमें क्रमश प्रथम भागमें पञ्च महासतियों, द्वितीय भागमें पञ्च विदषी रमणियों और तृतीय भागमें पञ्च भक्त स्त्रियोंका चरित्र चित्रित करनेके साथ प्रत्येक भागमें क्रमश बीस पचीस वीरांगनाओंका चरित्र बड़ोही सरल भाषामें लिखा है। कन्तु सर्व साधारणके सुभीतेके लिये हमने इस पुस्तकको छः भागोंमें विभक्त करनेका निश्चय किया है। आशा है पाठिकाए हमारी पूर्व पुस्तकोंकी भांति इसे भी अपनाएगी।

—प्रकाशक

महासती अनुसूया

"सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा ।
पतिव्रता नमस्कृत्य मुच्यते पातकान्नरः ॥"

(सतियोंके चरणोंकी धूलिसे तुरन्तही पृथ्वी पवित्र
हो जाती है। उन पतिव्रताओंको नमस्कार
करके मनुष्य भी पापसे मुक्त होते हैं।)

महासती अनुसूया
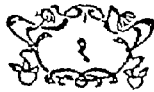
नुसूया कर्दम ऋषिकी पुत्री और देवहुतिकी लाड़ली बेटी थी। उसके आठ बहनें और एक भाई था। भाईका नाम था "कपिलदेव"। भगवान् कपिलदेव बड़े ही तत्ववेत्ता और सांख्य-शास्त्रके निर्माता थे। अनुसूयाने भी उन्हींके पास रह कर, उन्हींकी शिक्षा द्वारा दर्शन-शास्त्र, सांख्य-शास्त्र एवं पुराणोंका उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। उसका हृदय उन्हींकी श्रेष्ठ शिक्षाओंके प्रभावसे अत्यन्त उदार और कोमल बन गया; कर्तव्याकर्तव्यका अच्छा विवेक हो गया।

अनुसूयाका विवाह ऋषि-श्रेष्ठ अत्रिके साथ हुआ था। ब्रह्मर्षि अत्रि भी वेदादिके पूर्ण ज्ञाता तथा योगाभ्यासमें निरन्तर लीन रहने वाले थे। अनुसूया पति-गृहमें पहुंच कर अपनी पवित्र सेवासे सदा अपने पतिको प्रसन्न रखने लगी। कोई भी कार्य, जिसे वह स्वतः सम्पादित कर सकती थी, अपने पतिको कभी न करने देती थी। प्रत्येक कठिन-से-कठिन कामको भी प्रसन्नतापूर्वक

दुःख झेलकर सहज ही पूरा करती थी। उसके प्रत्येक गुणका वर्णन करना असम्भव है।

सचमुच इस सती बालाको पति-सेवाके लिये संसारमें अत्याधिक कष्ट उठाना पड़ा। किन्तु अपनी सच्चरित्रता, धीरता, कार्य-दक्षता और बुद्धिमत्तासे इस देवीने सभी कष्टोंको निर्भीकतापूर्वक सहन किया। इसने अपने कार्य-कलाप और उत्कृष्ट त्यागसे जो आदर्श उपस्थित किया है, वह आज भी भारतीय रमणियोंके लिये परम गौरवकी सामग्री है।

संयोगवश एक बार देशमें बड़ाही विकट अकाल पड़ा। मनुष्यकी तो बात ही क्या, पशु-पक्षी भी अन्न-जलके बिना मरने लगे। देशमें सर्वत्र हाहाकार मच गया। नदी-नाले और कूएँ सूख गये। किसी भी प्राणीका एक जगह शान्त भावसे रहना कठिन हो गया।

जिस रमणीय तपोवनमें ऋषि अत्रिका आश्रम था, दुर्भिक्षने वहां भी अपना प्रभाव फैलाया। फल यह हुआ कि धीरे-धीरे फल-फूल और जलके अभावसे दुःखित हो ब्रह्मर्षि अत्रिको छोड़ तपोवनके अन्य सभी ऋषियोंने वह स्थान परित्याग किया। यह हृदय-विदारक कारुणिक दशा अत्रिसे न देखी गई। उन्होंने

अत्यन्त दुःखित हो तत्क्षण ही समाधि लगा ली।

पतिदेवको समाधिस्थ देखकर सती अनुसूया भी वहीं पर कुशासन बिछाकर बैठ गई और दिन-रात उनकी सेवा करने लगी। वर्षा, शरद और ग्रीष्म, सभी एक-एक कर व्यतीत होगये; किन्तु यह पतिव्रता देवी अपनी समाधिसे विचलित न हुई।

अनेक शताब्दियोंके पश्चात् अचानक एकदिन ऋषि अत्रिने अपने नेत्र खोले। समाधिसे उठते ही प्यासके कारण अपनी पत्नीसे जल मांगा। पतिव्रता यह जानते हुए भी कि आश्रमके आसपास कहीं भी जल मिलना मुश्किल है, कमण्डल लेकर जल लेनेके लिये चल पड़ी। एक-एक कर उसने अनेक जलाशयोंको देख डाला, किन्तु उस भीषण दुर्भिक्षमें कहीं भी जल दृष्टिगोचर न हुआ!

बेचारी अनुसूया हतोत्साह होकर एक वृक्षके नीचे बैठकर ईश्वरका ध्यान करने लगी—"प्रभो! अबला पर दया करो! यदि आज जल न प्राप्त हुआ, तो पतिदेवको जाकर क्या उत्तर दूँगी। देशमें सर्वत्र दुर्भिक्ष फैला है। ऐसे समयमें आपके सिवा दूसरा कोई सहायक नहीं। नाथ! पतिव्रताकी लाज आपकेही हाथ है।"

सती अनुसूया इस प्रकार विलाप करही रही थी कि यकायक उस मार्गसे उस समय वहां एक अत्यन्त तेजोमयी तपस्विनी आ पहुंची और बड़े ही मधुर शब्दोंमें बोली-"देवि! इस घोर जंगलमें तुम यहां चिन्तित-हृदय अकेली क्यों बैठी हो?"

अचानक निर्जन वनमें एक तपस्विनीकी अमृतमयी वाणी सुनकर घबराहटके साथ अनुसूया बोली—"माता ! मैं पतिदेवके लिये जलकी तलाश कर रही हूं; किन्तु खोजते-खोजते थक गई, जलका कहीं पता भी न लगा। यदि आपको कोई स्थान ज्ञात हो, तो दया कर बतानेका कष्ट करो।

तपस्विनी—देवि ! तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है। ऐसे भीषण अकालके समय जल प्राप्त होना असम्भव है। मैंने इस तपोवनके प्रायः प्रत्येक स्थानमें भ्रमण किया; किन्तु मुझे जलाशय कहीं भी देख न पड़ा।

तपस्विनीके मुखारविन्दसे इस प्रकारके निराशाजनक शब्दोंको श्रवण कर अनुसूयाको कुछ क्रोध हो आया। उस ने उसी समय गम्भीर शब्दोंमें कहा—"मैं यहाँसे जल लेकर ही हटूंगी। यदि जल न मिला, तो आज यहीं पर मेरा प्राणान्त होगा। तुम देखती रहो, मैं किस प्रकार अपने सतीत्व बलसे यहीं पर जल मंगाती हूं। पत्नीके जीवित रहते भला पूज्य पतिको जलका कष्ट उठाना पड़ेगा ? मैं अपने पातिव्रतके प्रभावसे अभी चक्रधर विष्णुका आसन डुलाकर साक्षात गंगाको यहां बुलाती हूं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भगवान् कभी पतिव्रताका मनोरथ भंग न करेंगे।"

तपस्विनी—अवश्य, देवि ! तुम्हारी पुकार व्यर्थ न जायेगी।

मैं साक्षात् गंगा तुम्हारे सामने खड़ी हूं। तुम्हारा प्रशंसनीय पातिव्रत देखकर मुझे अपार हर्ष हुआ है। तुम धन्य हो! लो, जल तैयार है।

इतना कहकर भगवती गंगाने तत्क्षण अपनी शक्ति द्वारा वहीं पर जलकी एक धारा उत्पन्न कर दी। जलके प्रवाहित होतेही अनुसूयाने प्रसन्न होकर अपना कमण्डल भरा और भगवती गंगाके चरणोंमें गिरकर प्रणाम किया।

भगवती गंगाने आशीर्वाद दिया। अनुसूयाने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"भगवति! दयाकर एकबार मेरे आश्रमको भी पवित्र बनानेका कष्ट करो। मेरे पतिदेव अनेक वर्षों के बाद आजही समाधिसे उठे हैं। अच्छा होता, यदि तुम उन्हें भी दर्शन देनेका कष्ट स्वीकार करतीं। तुम्हारे दर्शन कर हम लोग धन्य होंगे।"

इच्छाके न रहते हुए भी देवी गंगाने सतीकी बात मान ली। माननेके सिवा दूसरा कोई मार्ग भी तो न था।

इधर अनुसूयाके न आनेसे अत्रि ऋषिको प्यासके कारण महान कष्ट हो रहा था। वे मन-ही-मन नाना प्रकारकी कल्पनाएँ कर रहे थे। इतनेमें अनुसूया आ पहुंची।

अनुसूयाके जल लेकर आते ही उन्होंने विलम्बका कारण पूछा। उत्तरमें अनुसूयाने बड़ेही नम्र शब्दोंमें कहा—"नाथ! पहले जल ग्रहण कीजिये;तत्पश्चात् विलम्बका कारण बताऊंगी।

विलम्ब होनेसे आपको अत्यधिक कष्ट हुआ होगा; दासी इसके लिये क्षमा चाहती है।"

ऋषिने पत्नीकी बात मानकर वैसा ही किया। आजका जल उन्हें अत्यन्त प्रिय और स्वादिष्ट जान पड़ा। जल ग्रहण करनेके पश्चात् ऋषिने पुनः चञ्चलताके साथ वही प्रश्न किया। पतिकी आतुरता बढ़ती देखकर अनुसूयाने सम्पूर्ण कथा कह सुनायी। पत्नीके मुखसे भगवती पापनाशिनी गंगाके आगमनकी बात सुन मुनिराज आसनसे उठकर दौड़ पड़े।

सर्वदुःखहारिणी भगवती गंगासे साक्षात्कार होतेही ऋषिने श्रद्धा और भक्तिसे उन्हें प्रणाम किया। गंगाने भी आशीर्वाद देते हुए अनुसूयाके पातिव्रतकी महत्ता और कठिन पति-सेवाके गौरव का दिग्दर्शन कराया। साथ-ही उसकी अत्यधिक प्रशंसा भी की।

पत्नीकी प्रगाढ़ भक्ति और उसके अद्भुत कार्य-कलाप तथा उच्च आदर्शको सुनकर ऋषि अत्रिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—"देवि! जलके बिना संसार दारुण कष्ट उठा रहा है। अब उसे प्राण-दान दो! अकाल मृत्यु और भयङ्कर दुर्दैवसे देशकी रक्षा करो,और ऐसी कृपा करो कि तुम्हारे इस नये सोतेमें सदैव जल बहता रहे।"

गंगाने प्रार्थना स्वीकार कर ली। ऋषि-पत्नीके स्मरणार्थ आज भी भारतके दक्षिण भागमें "अत्रि गंगा" और "ऋपीश्वर महादेव" का मन्दिर विद्यमान है।

एक समय देवर्षि नारदजीके अत्यन्त प्रशंसा करने पर त्रिदेव-(ब्रह्मा, विष्णु, महेश)ने भी अनुसूयाके पातिव्रतकी परीक्षा करनेका संकल्प किया। त्रिदेवोंकी पत्नियोंने भी इस कार्यमें अपनी अनुमति प्रदान की।

सयोगवश एक दिन अत्रि ऋषि किसी कार्यके लिये विन्ध्याचलकी ओर गये हुए थे। समय देख त्रिदेव भी भेष बदल कर परीक्षाके लिये उस महासतीके पास जा पहुंचे। अनुसूयाने बड़ेही प्रेमसे इन साधु-वेशधारी आगत त्रिदेवोंका स्वागत किया। अपने ही हाथों भोजनकी सम्पूर्ण सामग्री तैयार कर उन छद्मवेशी साधुओंके सामने भोजनार्थ ले आयी, पर उन साधुओंने भोजन करनेसे इनकार किया। कारण पूछने पर उत्तर मिला—"यदि तुम हम लोगोंके सम्मुख दिगम्बरावस्थामें आकर भोजन परोसो, तो हमलोग भोजन कर सकते हैं, अन्यथा विना भोजन ग्रहण किये ही वापस चले जायेंगे।"

साधुओंका ऐसा अनुचित प्रस्ताव सुनकर अनुसूया बड़े असमञ्जसमें पड़ी। उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। कुछ क्षण विचार करनेके बाद उसने पतिदेवके चरणोंका ध्यान धारण कर जलका एक छींटा उन तीनों साधुओंपर फेंक दिया, जिसके पड़ते

ही पातिव्रतके प्रभाव से त्रिदेव उसी दम शिशु-रूपमें परिणत हो गये। एक आदर्श माताकी भांति उसने तीनों शिशुओंका विधिवत् पालन करना प्रारम्भ किया। जब अत्रि ऋषि बद्रिका-श्रमसे वापस लौटे, तो उसने सम्पूर्ण घटना कह सुनायी। ऋषिने इसे भी अपना अहोभाग्य समझा और प्रसन्नतापूर्वक उनकी मुक्तिके लिये आज्ञा प्रदान की। उसने पतिकी आज्ञासे तत्क्षण उन त्रिदेवोंको शापसे मुक्त किया। शाप-मुक्त होते ही त्रिदेव अपने असली रूपमें परिणत हो गये। अपने सम्मुख ब्रह्मा, विष्णु और महेशको देखकर दम्पतिने उन्हें सादर प्रणाम किया। त्रिदेव अनुसूयाके सतीत्व-बलकी प्रशंसा करते हुए, दम्पतिको अनेक आशीर्वाद प्रदान कर, अपने-अपने लोकको चले गये।

जिस समय भगवान् रामचन्द्र अपने पिता की आज्ञा मानकर, चौदह वर्ष वनवासके लिये, लक्ष्मण और सीताके साथ, अयोध्यासे वनको सिधारे थे, उस समय अनेक स्थानोंका भ्रमण करते हुए अत्रि ऋषिके पवित्र आश्रममें भी आये थे। मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रने पहलेही अपनी प्रियतमा सीतासे महा-सती अनुसूयाकी प्रशंसा की थी। अनुसूयाकी ज्ञान-गरिमा और पातिव्रतकी चर्चा अपने पतिके अतिरिक्त सीता औरोंसे भी सुन चुकी

थीं। आज उसी यशस्विनी अनुसूयाके पास पहुंचनेपर सीताकी वह इच्छा बलवती हो उठी। उन्होंने सती अनुसूयासे कुछ उपदेश ग्रहण करनेकी इच्छा अपने स्वामीसे प्रकट की। प्रियतमा सीताकी इस आदर्श अभिलाषाको सुनकर रामचन्द्रजीको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने सीताको अनुसूयासे शिक्षा ग्रहण करनेकी अनुमति प्रदान की। सीताने स्वामीकी आज्ञासे सती अनुसूयाके पास जाकर श्रद्धा-भक्तिके साथ उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और कहा—"देवि! इस दासीको आपके मुखारविन्दसे पति-सेवाकी महिमा और आर्य-नारियोंके कर्तव्य जाननेकी लालसा है। बड़ी दया हो, यदि आप अपनी अमृतवाणी द्वारा मुझे उपदेश देकर कृतार्थ करें।

महासती अनुसूयाने उस समय भगवती सीताको जो उपदेश प्रदान किये थे, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। गोस्वामी तुलसीदास जीके शब्दोंमें महासती अनुसूयाके उपदेशोंको सुनिये। कितना पवित्र, कैसा सुन्दर और क्या ही भावपूर्ण उपदेश है—

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमितदानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धरम, मित्र अरु नारी। आपदकाल परखियहि चारी॥
वृद्ध,रोगबस जड़, धनहीना। अन्ध बधिर, क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धरम, एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति-पद प्रेमा॥
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं। वेद, पुरान, सत सब कहहीं॥

उत्तमके अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम पर-पति देखै कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धरम विचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट तिय स्रुति असकहई॥
बिनु अवसर भय ते रह जाई। जानहु अधम नारि जग सोई॥
पतिव चक पर-पति-रति करई। रौरव नरक कलप सत परई॥
छन सुख लागि जनम सतकोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु स्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत-धरम छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। विधवा होइ पाइ तरुनाई॥
सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहई।
जसु गावत स्रुति चारि, अजहुं तुलसिका हरिहि प्रिय॥
सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहि।
तुम्हहि प्रान प्रिय राम, कहेउ कथा संसार-हित॥

अनुसूया उन विदुषी नारियोंमें थी, जिन्होंने भविष्यमें आनेवाली सन्तानके लिये उत्तम शिक्षाका आदर्श रखा है।

प्रतिष्ठान पुरमें, जो आजकल प्रयाग और इलाहाबादके नामसे प्रसिद्ध है, किसी समय नर्मदा * नामक एक सती ब्राह्मणी रहती थी। उसका पति कुष्ठ-रोगसे पीड़ित और अत्यन्त क्रोधी

* नर्मदाके चरित्रका विस्तृत हाल जानना हो, तो हमारे यहांसे सचित्र 'सती सुलक्षणा' अवश्य मँगाकर पढ़िये। मूल्य ॥)

था। तो भी वह सती तन-मनसे सेवा किया करती थी।

एक दिन नर्मदा अपने पतिको कन्धे पर चढ़ाकर रातके समय उसीकी आज्ञानुसार एक सुन्दरी वेश्याके पास ले जा रही थी। अचानक मार्गमें सूली पर लटके हुए ऋषि-श्रेष्ठ माण्डव्यके शरीर में नर्मदाके पतिका पैर लग गया। पैरके लगतेही सूलीके हिलनेसे महात्मा माण्डव्यको अति क्लेश हुआ, क्रोधवश उसी क्षण शाप दिया—"जिस पापिष्ठ जीवका मेरे शरीरसे स्पर्श हुआ है, वह सूर्योदयके पूर्व ही मृत्युको प्राप्त होगा।"

शापके सुनते ही सती नर्मदाका सम्पूर्ण अंग थरथरा उठा। उसके रोमाञ्च हो आया। उसने बड़ी व्याकुलताके साथ गम्भीर शब्दोंमें कहा—"यदि यह शाप अटल है, तो मैं भी सूर्योदयका होना ही बन्द करती हूं। संसारमें कहीं भी सूर्यका प्रकाश न होगा।"

नर्मदा सती थी। भगवानने सतीकी लाज रख ली। सूर्योदय न हुआ। सम्पूर्ण संसार अन्धकारमय हो गया। देवता और ऋषि यज्ञादि अनुष्ठनोंके बन्द होनेसे व्याकुल हो उठे। संसारका सारा कारोबार बन्द हो गया। इस महान कष्टसे उद्धार पानेके लिये अनेक ऋषि और देवता सती अनुसूयाके पास आए।

शरणागत देव-ऋषिगणकी दशापर अनुसूयाको दया आ गई। उसने प्रतिष्ठानपुरके लिये प्रस्थान किया। नर्मदाकी कुटीमें पहुंच

कर उसने अनेक प्रकारकी पति सेवा-विषयक शिक्षा प्रदान की। पश्चात् संसारके दुःखका अनुभव कराया; साथ-ही उसके इस वृहत् कार्यकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा भी की।

नर्मदा—माता! आपके शुभागमनसे आज मेरा घर पवित्र हुआ। आपके अमृतमय उपदेशोंसे यह दासी कृतार्थ हुई। कहिये आपके आगमनका कोई विशेष कारण तो नहीं है?

अनुसूया—पुत्री! सारा संसार अन्धकारमें लीन है। सृष्टि का आधार सूर्यही है। केवल एक अपने पतिके लिये सब प्राणि-योंको अन्धकारके अथाह कूपमें न डालो। यदि शीघ्रही सूर्योदय न हुआ, तो प्रलय हो जायगा।

नर्मदा—माताजी! आपका कथन यथार्थ है। किन्तु सती स्त्री क्या अपने पूज्य पतिको अनायास मरते देख सकती है?

अनुसूया—पुत्री! इसके लिये तू चिन्ता न कर। मैं उन जगदाधार दयासागर भगवानकी कृपासे तेरे पतिको जिला दूँगी। तुझे विधवा होकर दुःख सहना पड़े, यह मैं नहीं चाहती। तू सूर्यो-दय होने दे, फिर मैं भी अपने पातिव्रतके प्रभावसे तेरी इच्छा पूर्ण कर दूँगी।

नर्मदाको अनुसूयाकी बातोंपर विश्वास था। उसने सहर्ष बात मान ली। आकाशकी ओर देखकर हाथ जोड़कर बोली— "दयानिधि, भक्त-वत्सल! आपने मुझपर बड़ा उपकार किया जो

आज मेरे पातिव्रतकी लाज रख ली। सृष्टिके सभी प्राणी सूर्यदेव के बिना अत्यन्त क्लेश पा रहे हैं। अतः सृष्टिके कल्याणके लिये सूर्यका उदय होना आवश्यक है। मैं चाहती हूं कि शीघ्र सूर्योदय हो। जैसे वह लाज रक्खी, वैसेही अब इस समय लाज रखिए।"

नर्मदाकी प्रार्थना पूर्ण भी न होने पायी थी कि सूर्योदयका होना प्रारम्भ हुआ। सूर्यके उदय होतेही नर्मदाके जीवनाधार 'कौशिक' इस दुनिया से कूच कर गये। महात्मा माण्डव्यका शाप पूर्ण हो गया।

कौशिकके मरतेही सती नर्मदा अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। सती नर्मदाका शोक भगवती अनुसूयासे न देखा गया। उन्होंने उसी क्षण अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार नर्मदाके पतिको जिला कर निरोग कर दिया।

पतिके जीवित होतेही नर्मदाको अपार हर्ष हुआ। कौशिकको भी अनुसूयापर पूर्ण भक्ति हो गई। दम्पतिने उसी समय घुटने टेककर सतीत्व-व्रत-धारिणी अनुसूयाके चरणोंमें सिर झुकाया। प्रसन्नचित्त अनुसूया* भी दोनोंको आशीर्वाद देकर तपोवनको वापस चली गईं।

---

* अनुसूयाका विस्तारपूर्वक चरित्र जानना हो, तो हमारे यहांसे सचित्र 'महासती अनुसूया' नामक पुस्तक अवश्य मंगाकर पढ़िये। मूल्य ।||)

अनुसूयाके पवित्र गर्भसे दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्र नामक तीन पुत्र हुए थे। तीनोंही एक-से-एक महान तत्व-ज्ञाता, जितेन्द्रिय और ईश्वर-परायण थे। इन तीनों पुत्रोंमें भगवान् दत्तात्रेय बड़ेही बुद्धिमान, दूरदर्शी और ईश्वर-भक्त थे। दत्तात्रेयने जिस युक्तिसे दुष्ट दैत्योंका संहार कर इन्द्रको इन्द्रासन दिलाया और देवताओंको अभय किया; वह युक्ति बड़ीही प्रशंसनीय थी। दत्तात्रेय योगियोंमें श्रेष्ठ, और ज्ञानियोंमें आदरणीय थे। उनका आध्यात्मिक ज्ञान बड़ाही प्रचण्ड और उनकी दृष्टि बड़ीही सूक्ष्म थी।

अनुसूया—देवीने अपना सम्पूर्ण जीवन पति-सेवामें ही व्यतीत किया था। अलौकिक पातिव्रत, उत्कृष्ट त्यागमयी, अद्भुत पण्डिता और आदर्श परोपकारिणी होनेके कारण ही सती रमणियोंमें अनुसूयाका स्थान सर्वोच्च माना गया है।

सती सीता।

"वचसि मनसि काये जागरे स्वप्नसंगे।
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि ॥
तदिह दह ममाङ्गं पावनं पावकेदं।
सुकृतदुरितभाज्यां त्वं हि कर्मौकसाक्षी ॥"

(यदि शरीर, मन और वचनसे अथवा सोते-जागते, किसी भी अवस्थामें, रामचन्द्रको छोड़ किसी दूसरेमें मेरा पति-भाव हुआ हो, तो हे अग्नि देव, तुम्हीं पाप-पुण्य दोनों कर्मों के एकमात्र साक्षी हो, मेरे इस पवित्र शरीरको जला दो।)

सती सीता

स समयकी कथाका हम वर्णन करते हैं, वह त्रेतायुग था। त्रेतायुगमें, आर्यावर्तमें, महाप्रतापी 'रघु' के पौत्र चक्रवर्ती महाराज 'दशरथ' राज्य करते थे। दशरथकी राजधानी पतित पावनी सरयूके तट विशाल नगर अयोध्यामें थी। महाराजके कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा नामक तीन रानियाँ थीं। वृद्धावस्थामें पुत्रेष्टि-यज्ञ द्वारा महाराजके कौशल्यासे राम, कैकेयीसे भरत और सुमित्रासे लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामक चार महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुए। ये चारोंही बालक तेजवान्, गुणवान्, बलवान और रूपवान् थे। थोड़े समयमेंही इन चारों बालकोंने शस्त्र-विद्या सीखली। धर्मग्रंथोंके साथ-साथ गुरु वशिष्ठके घरपर जाकर वेद शास्त्रोंका भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। आरम्भसे ही राम और लक्ष्मण तथा भरत और शत्रुघ्नमें स्वाभाविक प्रेम था। किन्तु फिर भी चारों भाई एक दूसरेसे पूर्ण स्नेह और सद्भाव रखते थे।

चारों राजकुमारोंमें रामचन्द्र सबसे बड़े थे। इनके साथ जनकनन्दिनी राजकुमारी सीताका विवाह हुआ था।

सीता मिथिलाके महाराज परम ईश्वरभक्त जनकराजकी दुलारी कन्या थीं। महाराज जनक बड़े भारी योगी, धर्मात्मा, पुण्यवान् और आत्मज्ञानी तथा तत्त्व-ज्ञाता थे। यही कारण था कि संसारमें ये राजर्षि जनकके नामसे प्रसिद्ध थे। इनकी विलक्षण विद्या बुद्धिके सम्मुख बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानोंको भी मस्तक झुकाना पड़ता था। किसी समय अठारहों पुराणके निर्माता परम भागवत श्रीशुकदेवजीको भी इनका शिष्य होना पड़ा था।

दैवी कोपसे एक बार इनके विशाल साम्राज्यमें भीषण अकाल पड़ा। अनावृष्टिके कारण अकालसे चारों ओर हाहाकार मच गया। प्रजाकी इस मार्मिक दुर्दशासे महाराजका हृदय व्याकुल हो गया। वे ऋषि-मुनियोंसे सलाह कर अपने राज्यमें एक महान यज्ञ करने लगे। यज्ञके समाप्त होनेपर महाराज स्वयं सोनेके बने हुए हलसे खेत जोतनेमें तत्पर हुए।

पृथ्वी पर ऐसे पुण्यवान् महापुरुषके हल चलातेही आकाशमें मेघ छा गये। कृषकोंके जीमें जी आया। राजा जनकको खेतमें हल चलाते समय एक घड़ेसे एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या शिशु-रूप में प्राप्त हुई, जिसे वे साक्षात् लक्ष्मीका अवतार मानकर अपने साथ राजमहलमें ले आये।

कौन जाने संसारको शिक्षा देनेके लिए वसुन्धरासे साक्षात् कमला प्रगटी हों? अथवा, ऋषियोंके शोणितसे दुष्ट संहारिणी दुर्गाका प्रादुर्भाव हुआ हो? या भक्तोंकी पूजा और उपासनाके लिये जगदम्बाने अवतार लिया हो? कुछ भी हो, जनकराजने उस कन्याका नाम 'सीता' रक्खा। कारण हल चलानेसे जमीन पर जो रेखायें पड़ जाती हैं, उन्हें 'सीता' कहते हैं।

राजर्षि जनक सीताको प्यारी पुत्रीके समान अत्यन्त प्रेमसे पालने लगे। इसीसे सीताका नाम "जानकी" भी पड़ा। महाराज जनक विरक्त रहनेके कारण 'विदेह" भी कहलाते थे। इसीसे सीता "वैदेही" नामसे भी पुकारी जाती थीं।

सीता रूपमें लक्ष्मी और गुणमें सरस्वतीके समान थीं। जब बाल्यकाल बिता कर युवावस्थामें पहुंची, तो एक दिन उन्होंने बिना किसी प्रयोजनके शिवके त्रिशास्त्र धनुषको उठा लिया, जो भगवान् परशुरामने महाराज जनकको पूजनेके लिये दिया था। जनक उसकी नित्य पूजा किया करते थे। वह धनुष अत्यन्त कठोर, भारी और विशाल था।

महाराजको सीताका यह अद्भुत पराक्रम देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसी समय यह प्रतिज्ञा की कि, जो पुरुष-पुङ्गव इस धनुषको भग करेगा, वही सीताको पानेका अधिकारी होगा।

इधर महर्षि विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मण भी घूमते-फिरते, मार्गमें ताड़का नामक विकराल राक्षसी तथा अन्य अनेक उत्पाती राक्षसोंका हनन करते और पाषाणमयी अहिल्याका उद्धार करते हुए मिथिलामें आ पहुंचे।

मिथिलामें स्वयंवरकी तैयारी थी। देश-देशके राजे-महाराजे एकत्र थे। ऋषि-मुनियोंका पूर्ण रूपसे जमघट था। देश-देशान्तरके शूर-वीरोंके शुभागमनसे मिथिलाकी भूमि सुशोभित थी।

ठीक समय पर स्वयंवरका कार्य आरम्भ हुआ। स्वयंवर-सभा की सजावट अत्यन्त सुन्दर थी। सहस्रों राजाओंका दल सुन्दर मंचों पर शोभायमान था। स्वयंवरके पीछेकी तरफ ऊंचे महलोंमें रनवास था। नीचेके चौकमें दरबारियों और जनक-राजके विराजनेका रत्न-जटित सिंहासन था। बीच रंग शालामें महादेवका पुराना विशाल धनुष भलीभाँति सजा हुआ रखा था। सारा राज-समाज श्रीसीताजी के आनेकी प्रतीक्षा कर रहा था।

उचित समय देखकर महाराज जनकने सीताको जयमाल सहित "स्वयवर-सभा" में बुलवाया। सुन्दर गान-वाद्य और अनेक सुमुखी सखी-सहेलियोंके संग सीता-देवी हाथोंमें पुष्प-माला लिये स्वयवर-सभामें पधार। सुन्दरताकी अपूर्व छटा थी।

जानकीके रंगभूमिमें पधारते ही रङ्ग-मण्डप जगमगा उठा।

जगदम्बा सीताकी उपमा आधुनिक नारियोंसे देकर लेखनी-को कलंकित करना है। स्वर्गीय देवियां भी क्या समता करें? पार्वती भी अमंगलवेशी भगवान् शंकरकी अर्धाङ्गिनी हैं। रति भी तन-हीन कामदेवकी पत्नी है। लक्ष्मीकी उपमा कैसे दें, वह विष और मदिरा की भगिनी हैं। इसलिये लोक और परलोकमें सीता देवी महान शक्ति और अलौकिक सौन्दर्यकी अधिष्ठात्री हैं। राजकुमारी सीता जयमाल लिये हुए जनक-राजके पास आकर खड़ी हो गईं।

यथासमय महाराज जनककी प्रतिज्ञा आये हुए राजे-महा-राजोंको बन्दीगण द्वारा सुनाई गई। प्रण सुनतेही बड़े-बड़े राजा आवेशमें आकर शिव-धनुष उठाकर तोड़ डालनेके लिये जाने लगे, किन्तु सारा बल लगाने पर भी महादेवका वह पिनाक तिल भर भी न डिगा, बल्कि और प्रगाढ़ होता गया।

बाणासुर और रावण आदि अनेक राजाओंकी इस दशाको देखकर जनकराजको अत्यन्त निराशा हुई। उन्होंने आये हुए सभी राजाओंको सम्बोधन करते हुए बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें कहा—"हे राजागण,आज मालूम होगया कि पृथ्वी निछत्र हो गई। यदि मुझे ऐसा विश्वास होता कि वसुन्धरा वीरोंसे खाली है, तो मैं ऐसी प्रतिज्ञा कर अपना उपहास न कराता। आजसे

पृथ्वी वन्ध्या हुई, क्षत्रियोंमें वीर-माताओंका एक बिन्दु रक्त भी नहीं रह गया; वीर-प्रसविनी आदर्श माताओंने वीर पुत्रोंका प्रसव करना छोड़ दिया, संसारसे अब वीरताका नाम मिट गया। यदि पहले यह जानता, तो मैं ऐसी प्रतिज्ञा भूलकर भी न करता। पर, अब जो हो, क्षत्रिय-प्रतिज्ञा अटल है। जानकी क्वाँरी रह जाय भलेही, पर जनकका वचन तिलमात्र भी इधरसे उधर नहीं हो सकता। अब आप लोग सीताके पानेका आसरा छोड़कर अपने-अपने घरको प्रस्थान कीजिये। विधाताने सुकुमारी सीताका विवाह नहीं लिखा है।

महाराजके रोष और अपमान भरे शब्द सुनकर वीर लक्ष्मण को क्रोध चढ़ आया। भृकुटी तन गई; भुजदण्ड और ओंठ फड़कने लगे। वे सूर्यवंशका अपमान समझ कर व्याकुल हो उठे। गुरु और भ्राताके चरणोंका ध्यान करके तेजस्वी ब्रह्मचारी लक्ष्मण क्रोधित सिंहके समान रंग-मंच पर गरज उठे—

रघुवंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुल मनि जानी॥
सुनहु भानु कुल पंकज-भानू। कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हार अनुसासन पावउँ। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठावउँ॥
काँचे घट जिमि डारउँ फोरी। सकउँ मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करउँ विलोकिय सोऊ॥

कमल नाल जिमि चाप चढ़ावउँ। जोजन सत प्रमान लै धावउँ ॥
तोरौं छत्रको दण्ड जिमि। तव प्रताप-बल नाथ।
जो न करउँ प्रभु पद सपथ। पुनि न धरउँ धनु हाथ ॥

लक्ष्मणके इन क्रोध-भरे वचनोंको सुनकर रामचन्द्रने उन्हें बैठ जानेका इशारा किया। आज्ञाकारी लक्ष्मण पूज्य बड़े भाईकी आज्ञासे बिना कुछ कौतुक दिखाये ही बैठ गये। यह देख ऋषि विश्वामित्रने रामको धनुष तोड़ डालनेकी आज्ञा दी। गुरु-भक्त राम तत्काल ही उठे और मन-ही-मन मुस्कुराते हुए धनुष के पास जा पहुचे।

रामके उठतेही स्वयंवरमें चारों ओर कानाफूसी होने लगी। भगवती सीताको राम जैसे सुन्दर, सुशील और शक्ति-शाली युवकको इस महान कार्यके लिये उद्यत हुआ देखकर कितना हर्ष हुआ होगा,सो यह निर्जीव लेखनी नहीं बता सकती।

श्रीरामने गुरु और माता-पिताके पूज्य चरणोंका ध्यान कर पिनाकको एक बारमें उठा लिया और लोगोंके देखते-ही-देखते उसकी प्रत्यंचा चढ़ाकर तोड डाला। जयजयकारसे आकाश गूंज उठा। आकाशसे पुष्प-वृष्टि होने लगी। जनकके चिन्तित परि-वारमें आनन्दकी धारा प्रवाहित हो चली। पुरोहित और पिताकी आज्ञासे सीताने कुछ लजाते, कुछ सकुचाते हुए और कुछ मन-ही-मन मुस्कराते हुए रामके गलेमें जयमाल पहनायी।

जनकने महाराज दशरथको बुलाकर शुभलग्नमें राम-सीताका शुभ विवाह कर दिया। साथही, राजर्षिने अपनी अन्य तीनों कन्याओंके विवाह भी दशरथके शेष तीनों पुत्रोंके साथ कर दिये। उर्मिला लक्ष्मणको, माण्डवी भरतको और श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्नको व्याही गई। विवाह होनेपर अपनी कीर्ति-लतिकाके इन सुन्दर फलोंको देखकर महाराज जनक तथा चक्रवर्ती दशरथ फूले अङ्ग न समाये।

शुभ घड़ीमें महाराज दशरथ अपनी चारों पुत्रवधुओं, अनेक स्वर्णालंकारों, रथ-घोड़े-हाथियों और बहुमूल्य पदार्थोंको दहेजमें लेकर अपने परिवार और बरातियोंके साथ अयोध्या वापस आये। महानगरी अयोध्या इस महोत्सवसे खिल उठी। रानियोंके आनन्दका वारापार न रहा। सभी नगर-निवासी प्रेमपूर्वक आनन्दके साथ समय बिताने लगे।

जब महाराज दशरथकी वृद्धावस्था आ पहुंची, तब उन्होंने अपने विशाल राज्यकी बागडोर रामचन्द्र-जैसे सुयोग्य जेष्ठ पुत्रके हाथोंमें सौंपना निश्चित किया। वशिष्ठ आदि गुरुजनोंसे परामर्श कर राज्यमें राम-राज्याभिषेकका ढिंढोरा पिटवा दिया। पर देवताओंको यह कब मंजूर था। वे रामचन्द्रसे संसारका कोई

दूसरा ही महान कार्य कराया चाहते थे। अत. उन्होंने एक विचित्र षडयन्त्र-नाटकका आयोजन किया। कैकेयीकी एक चतुर दासी मन्थराको उस नाटकका सूत्रधार और महाराज दशरथकी परम-प्रिया पत्नी कैकेयीको प्रधान नायिका बनाया।

भोली-भाली कैकेयी दुष्टा मन्थराके झाँसा-पट्टीमें आ गई। वह उसके परामर्शसे 'कोप-भवन'में जाकर उदास पड रही। वहाँ महाराजके आने तथा कारण पूंछने पर उसने पूर्वके दिये हुए अपने दोनों वचन मागे। महाराजके वचन देने और प्रतिज्ञा करने पर कैकेयीने कहा—"रामको चौदह वर्ष वनवास और भरतको राज्याभिषेक दीजिये।" कैकेयीके इन कठोर वचनोंको सुनकर महाराज पर सहसा वज्रपात हुआ। वे असह्य यन्त्रणासे तत्क्षण ही मूर्छित हो गये।

जब यह घटना मातृ-पितृ-भक्त मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रको मालूम हुई,तब वे पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये प्रसन्नता-पूर्वक तैयार हुए। रातों-रात अपनी तीनों माताओंसे भेंटकर,उनसे विदा हो और आर्शीवाद ले, वस्त्रालंकारोंको उतार और सबसे यथायोग्य मिलकर वन जानेको उद्यत हुए। जब यह सम्वाद सीताजीके पास पहुंचा, तो अत्यत व्याकुल होकर वे रामचन्द्रके पास आई और साथ-साथ वन जानेकी अभिलाषासे पतिसे अपने साथ ले चलनेकी प्रार्थना करने लगीं।

सीताकी इच्छा और प्रार्थना सुनकर भगवान् रामचन्द्रको हर्षके बदले विषाद हुआ। उन्होंने सीताको अनेक प्रकारसे वन न जानेके लिये उपदेश दिया। साथ ही, अपनी अनिच्छा भी प्रकट की, जिसे सुनकर सीताजीने बड़े मार्मिक और कारुणिक शब्दोंमें उत्तर दिया—

प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु, सुरपुर नरक समान॥
मातु पिता भगनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सजन सुहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। प्रिय बिनु तियहिँ तरनि ते ताते॥
तनु धन धाम धरनि पुर राजू। पति-बिहीन सब सोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषन भारू। जम-जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम बिन जग माही। मो कहँ सुखद कतहुँ अब नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तइसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल-बिधु-बदन निहारे॥
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु-बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
सबहि भाँति प्रिय सेवा करिहउँ। मारग जनित सकल स्रम हरिहउँ।
पाय पखारि बैठ तरु छांही। करिहउ बाउ मुदित मन माही॥
को प्रभुसग मोहि चितवनिहारा। सिंघ बधुहि जिमि ससक सियारा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कह भोगू॥
ऐसेउ बचन कठोर सुनि। जौं न हृदय बिलगान।

तौ प्रभु विषम वियोग दुख। सहिहहि पाँवर प्रान॥

सीताकी प्रेमयुक्त वाणी सुनकर रामचन्द्रको विश्वास हो गया कि यह मुझे छोड़कर पल-भर भी जीवित नहीं रह सकती। लाचार हो वनमें साथ चलनेकी अनुमति देनी ही पड़ी। उसी समय वहां व्याकुल-हृदय भ्रातृ-भक्त लक्ष्मण भी आ पहुंचे। उन्होंने भी आते ही वन जानेकी उत्कट अभिलाषा प्रकट की।

भ्रातृ-वत्सल रामचन्द्रने लक्ष्मणको अयोध्यामें रहनेके लिये जिस प्रकार समझाया और भक्तिपूर्ण हृदयसे उसका लक्ष्मणजीने जो उत्तर दिया, उस भावमय वार्तालापके एक-एक शब्द मनन करने योग्य हैं—

रामचन्द्र—

मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु जनम जग जाय॥
अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातुपितु पद सेवकाई।
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं। राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं॥
मै वनजाउँ तुम्हहिं लेइ साथा। होइ सबहि विधि अवध अनाथा।
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कह परइ दुसह दुख भारू॥
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥
रहहु तात अस नीति बिचारी। (सुनत लखन भये व्याकुल भारी)
(उतर न आवत प्रेमबस, गहे चरन अकुलाइ)

लक्ष्मण—

नाथ ! दास मैं, स्वामि तुम्ह, तजहुत कहाँ बसाइ ॥

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मंदर मेरु कि लेहिं मराला ॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरे सबहि एक तुम स्वामी। दीनबन्धु उर अन्तरयामी ॥
मन क्रम बचन चरन रति होई। कृपासिन्धु परिहरिय कि सोई ॥

लक्ष्मणके प्रेम-भरे शब्द सुनकर सरल-स्वभाव रामने उन्हें वन जानेकी आज्ञा प्रदान की।

बात-की-बातमें प्रातःकाल हो आया। राम और लक्ष्मणने नित्य-कर्मादिसे निवृत्त हो अमूल्य वस्त्रालंकारोंको उतार दिया। गेरुए वस्त्र धारण किये। अस्त्र-शस्त्र भी बांधे। सीताके लिये वशिष्ठजीने आज्ञा दी कि उन्हें वल्कल वस्त्र न पहनाये जाँय। राम और लक्ष्मणने पिताको प्रणाम किया। फिर दोनों भाई कौशल्या, कैकेयी और सुमित्राके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किये। माताओंकी चरण-रज लेकर दोनों सिंह-द्वारकी ओर चल पड़े।

महाराजकी आज्ञासे सुमन्तने रथ तैयार कर रखा था। उपस्थित समुदायको प्रणामकर लक्ष्मण और सीता सहित रामचन्द्रजी रथ पर चढ़े। इस समयका कारुणिक चित्र चित्रित करनेमें जड़ लेखनी असमर्थ है। आबाल-वृद्ध तथा श्रेष्ठ जनोंका

स्नेहाभिवादन और शुभ आशीर्वाद ग्रहण कर रामने सुमन्तको रथ चलानेका आदेश दिया।

देखते-देखते रथ आँखोंसे ओट हो गया। बेचारी अयोध्या अनाथ हो गयी। जहाँ दो दिन पूर्व आनन्दका साम्राज्य विराजमान था, आज उसी स्थानपर शोकका वज्र टूट पड़ा। महाराज दशरथ पुत्र-वियोगकी असह्य वेदनासे मूर्छित होगये।

अनेक जंगल-पहाड़ों और नदी-नालोंको पार करते, मार्गमें ऋषि-मुनियोंके दर्शन करते और दुष्ट दानवोंको हनन करते मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र और भ्रातृ-भक्त लक्ष्मणके साथ भगवती सीता गोदावरी तटके निकट पंचवटीमें जा पहुची। वहीं रघुनाथजीने पर्णकुटीर बनवाकर आनन्दके साथ निवास किया।

किन्तु,ससार-चक्रने इन तपस्वियोंको यहाँ भी शान्तिसे न रहने दिया। एक दिन लङ्काके महाशक्तिशाली राजा रावणकी बहन सूर्पनखा घूमती-फिरती इस वनमें आ पहुची। कामदेवके समान परम सुन्दर रूप वाले दोनों राजकुमारोंको देखकर वह अत्यन्त मोहित हो गई। कामातुर होकर सूपनखाने उन राजकुमारों से विवाहका प्रस्ताव किया; जिसे सुनकर रघु-नाथजी हँसे और लक्ष्मणजीने बड़े भाईके इशारेसे तत्काल उसकी नाक काट ली।

नाकके कटनेसे क्रोधित होकर वह अपने भाई खर-दूषणको

तपस्वियोंसे बदला लेनेके लिये सेना-सहित बुला लायी। उन्हें भगवान् रामचन्द्रने अकेलेही क्षण मात्रमें मार गिराया। बेचारी सूर्पनखा क्रोध और शोकसे अधीर होकर अपने बड़े भाई रावणके पास लङ्कामें गई और उससे सारी कथा कह सुनायी। साथ ही, उसे उकसानेके लिये यह भी कहा—"भाई! उन दोनों तपस्वियोंके पास एक अत्यंत सुन्दरी स्त्री है, जिसके जोड़की संसारमें कोई भी सुन्दरी स्त्री नहीं है।"

सुन्दर स्त्रीका नाम सुनतेही रावणका मन डिग गया। वह उसे हर लानेके लिये अपने प्रिय सखा मारीचको साथ लेकर गगन-मार्गसे पंचवटीकी ओर चल पड़ा।

पंचवटीमें पहुंचकर रावणकी प्रेरणासे दुष्ट मारीचने राक्षसी माया द्वारा एक स्वर्ण-मृगका रूप धारण किया। वह कुटीकी तरफ चौकड़ियां भरता हुआ आ पहुंचा, जहां दोनों भाई सीता-सहित बैठे बातें कर रहे थे। अचानक सीताने ऐसे मनोहर मृगको देखकर भगवान् रामचन्द्रसे कहा—"नाथ! इस सुनहले मृगकी खालका बड़ाही रमणीय आसन होगा। इसे किसी प्रकार मारकर मेरे लिये सुन्दर मृगछाला लाइये।"

रामचन्द्र भी भविष्य देखकर धनुष बाण सँभालकर लक्ष्मणसे बोले—"भाई, मैं मृगयाको जाता हूं, तुम सीताकी पूरी देखभाल करना। वनमें अनेक मायावी राक्षस घूमा करते हैं। अत. एक

पलके लिये भी इन्हें अकेली न छोडना। मैं इस सुन्दर हरिणका वध कर अति शीघ्र लौट आऊंगा।" इतना कहकर मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र धनुष पर शर सधानकर उस मृगके पीछे दौड़े। मृग भी चौकड़ियाँ मारता, अनेक बीहड़ स्थानोंमें रामको घुमाता-फिराता, बहुत दूर निकल गया। किन्तु रघुवंशी वीरके हाथोंसे शिकार का निकल जाना असम्भव था। कुछही देर बाद वह रामके बाणका शिकार हुआ। अन्त समय वह मायावी राक्षस बड़े जोरसे "हा लक्ष्मण" "हा सीता" चिल्लाकर सदाके लिये इस अपार संसार सागरसे पार हो गया। उस मायावीका यह आश्चर्यजनक चीत्कार सुनकर रामका चित्त किसी भावी आशंकासे विचलित हो उठा। वे शीघ्रतासे कुटीकी ओर चल पड़े।

इधर कुटीमें बैठी हुई सीताके कानोंमें मारीचके उक्त मार्मिक शब्द सुन पड़े। लक्ष्मणको तो अपने भाईके विजयी होनेपर पूर्ण विश्वास था; किन्तु सरला सीताका कोमल हृदय एकबारगी काँप उठा। वह अत्यंत अधीर हो उठी। अधीरता-भरे शब्दोंमें बोली—"लक्ष्मण! तुम्हारे भाई पर विपत्ति आयी है, जल्दी जा कर उनकी सहायता करो। मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। बस एक पल भी विलम्ब न करो।"

वीर लक्ष्मणने बहुत समझाया। किन्तु पतिप्राणा सीताको धैर्य न हुआ। यहां तक कि लक्ष्मण-जैसे विश्वासपात्र और

आज्ञाकारी देवर पर अनेक प्रकारके व्यंग्य कर बैठी। आखिर सीताके अनुचित शब्दोंने लक्ष्मणको कुटी छोड़कर रामके पास जानेके लिये विवश कर दिया। धनुषसे कुटीके चारों ओर रेखा खींच कर लक्ष्मण चले गए। भावी प्रबल है।

कुटीमें सीताको अकेली देखकर दुरात्मा रावणने यतीके भेषमें सीताके पास आकर भिक्षा माँगी। सरल-हृदया सीता कुटीके अन्दरसे कुछ फल-मूल लाकर उसे देने लगी। अवकाश देख रावणने सीताको पकड़ लिया और रथमें बैठा कर आकाश-मार्गसे लंकाकी ओर ले चला। उस समय असहाया सीताने जो हृदय विदारक विलाप किया, उसे सुन कर वनके पशु-पक्षी भी रो उठे। उसके दारुण विलापसे आकाश-मण्डल भर गया। वह बड़े करुण स्वरसे रोती जाती थी—

हा! जगदेकवीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति-हरन सरन-सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिन नायक॥
हा! लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोसा॥

सीताके इस आर्त्तनादसे वायु-मण्डल भर गया। वनके वृक्ष भी अश्रु-रूपमें पत्ते गिराने लगे। पर्वतोंने भी झरनेके रूपमें अश्रुधारा बहाई। जटायु नामके एक वृद्ध पक्षीने सीताकी रक्षाके लिये महायुद्ध किया; किन्तु रावणके कठिन कृपाणके आघातसे पक्ष-हीन होकर ज़मीनपर गिर पड़ा।

इधर राम और लक्ष्मण जब कुटीमें वापस आये, तो वहाँ सीताको न देखकर अत्यन्त अधीर हो उठे। भगवान् रामचन्द्र जंगलकी वृक्ष-लताओं और वनचरोंसे पागलकी भाँति सीताका पता पूछते हुए आगे बढ़े। मार्गमें उन्हें गृद्धराज जटायुसे भेंट हुई, जो मृत्युको घड़ियाँ गिन रहा था। उससे सम्पूर्ण वृतान्त सुनकर राम दक्षिण दशाकी ओर अग्रसर हुए। जाते-जाते दोनों भाई पम्पा-सरोवरके निकट किष्किन्धापुरीमें पहुंचे। मार्गमें "शबरी" नामक भीलनीके यहां कुछ'भक्ति-भेंट' स्वीकार करते गये। वनवासी होने के कारण किष्किन्धापुरीमें न जाकर ऋष्यमूक-पर्वत पर निवास किया। इसी पर्वत पर किष्किन्धाके राजा वालिको छोटा भाई सुग्रीव, अपने प्रिय मित्र हनूमान और जाम्बवानके साथ, रहता था। यहीं पर रामचन्द्रने सुग्रीवसे मित्रता की और उसके बड़े भाई वालिको मारकर उसे किष्किन्धाका राजा बनाया।

समय पाकर रामने सुग्रीवसे सीता-हरणका सब वृत्तान्त कह सुनाया। सुग्रीवने अपने मित्रको पत्नीकी खोज करनेके लिये महा-वीर हनूमानको दक्षिण दिशामें भेजा।
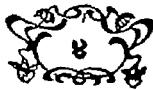
इधर लंकापुरीकी अशोक-वाटिकामें शोक-मूर्ति सीता बैठी अपने भाग्यको कोस रही थी। रावणकी नियुक्त की हुई दासियाँ उसे

नाना प्रकारके प्रलोभन और त्रास दे रही थीं। किन्तु उस पति-परायणा महासतीको भला पतिके सिवा संसारमें और सुख ही क्या था ? वह अपने प्राणनाथकी चिन्तामें डूबी रहती थी। समय-समय पर रावण भी आकर बहुत समझाता और भय दिखाता;पर उस पतिव्रताके सम्मुख दुष्टकी बकवासका कुछ मूल्य ही न था।

हनूमान लंकामें निर्विघ्न पहुँचकर सीताकी खोज करने लगे। उन्हें अन्तमें रावणके छोटे भाई विभीषणसे पता मालूम हुआ। तब अंजनीनन्दन अशोक-वाटिकामें जा पहुंचे। वहां देखा, सीता चुपचाप बैठी पति-विरहमें मग्न थी।

सीताकी मलिन दशा निरख कर हनूमान बहुत दुःखी हुए। उन्होंने तत्क्षण रामकी दी हुई मुद्रिका सीताके सामने फेंक दी। अचानक अपने प्राणनाथकी अंगूठी सामने गिरी देखकर सीता पुलकित हो उठी। अथाहमें डूबतेको सहारा मिल गया। झट उठकर अँगूठीको कलेजेसे लगा लिया। अशोक-वृक्षके पल्लवों की ओटमें बैठे हुए एक वानरको देखकर सीताने पूछा—"भाई! तुम कौन हो ?"

माता जानकीकी प्रेमपूर्ण वाणी सुनकर हनूमान नीचे उतर आये और सारी कथा संक्षेपमें सुनाकर सीताको शान्ति प्रदान किया। सीताने अपने स्वामीके विषयमें अनेक प्रश्न किये। सब का संतोषजनक उत्तर पाकर उन्हें यथेष्ट धैर्य हुआ।

अन्तमें हनूमानने हाथ जोड़कर कहा—"माता! अब मुझे आज्ञा दो कि मैं लौटकर तुम्हारा सन्देश भगवान् रामचन्द्रको जा सुनाऊ और यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मैं तुम्हें अपनी पीठ पर चढ़ाकर अति शीघ्र रामचन्द्रजीके पास पहुंचा दूं।"

यह सुनकर सीताने कहा—पुत्र! मैं दूसरे पुरुषका शरीर स्पर्श नहीं करती। केवल असहाय होनेसे पतिदेवके सिवा इस दुष्ट रावणके अंग का स्पर्श करना पड़ा था। लाचारी थी। यह अत्याचारी मुझे बलपूर्वक हर लाया था। धर्मशास्त्र ऐसे आपत्ति-कालमें क्षमा प्रदान करते हैं। मेरा पातिव्रत नष्ट नहीं हुआ है। पर अब वह दुष्ट मुझपर अत्याचार करनेकी तैयारी करता है। इस लिये तुम जाकर पतिदेवसे मेरी ओरसे कहना कि केवल तीन मास और शेष रह गये हैं। यदि इसके अन्दर वे न आये, तो मुझे जिन्दा न पावेंगे। मेरी एक-एक घड़ी एक एक कल्पके समान बीत रही है।

अन्तमें सीताजीको अनेक प्रकारसे धैर्य दे, उनसे सन्देश पहुचाने-का चिन्ह ले, वाटिका उजाड़, अक्षय कुमारको मार और दर्बारमें रावणका गर्व चूर्णकर तथा लंका जलाकर वीर-बाँकुरे पवन-सुत हनूमान समुद्र पार गए।
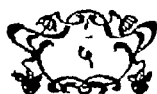
राम और लक्ष्मण हनूमानसे सीताका पता पाते ही बन्दर और भालुओंकी वृहत् सेना लेकर लंकाकी ओर अग्रसर हुए। समुद्रका पुल बाँधा गया। बानरी सेना लंकामें शत्रुकी छाती पर चढ़ आई। रावणका छोटा भाई विभीषण उसकी कुटिल करतूतोंसे तंग आकर राम-दलमें जाकर मिल गया।

बानरी सेनाके समुद्र लाँघते ही रावण सावधान हो गया। राक्षसी सेना भी सजाई गई। युद्धका नगाड़ा बजा। दोनों पक्षकी सेनाएं भिड़ गईं। रक्तकी नादियाँ बह चलीं। एक मास तक संग्राम होता रहा। बड़े-बड़े राक्षस योद्धा मारे गये। धीरे-धीरे रावणकी सेना और सन्तानका विनाश आरम्भ हुआ। कुम्भ-कर्ण और मेघनाद आदि बड़े-बड़े शूर-वीर खेत रहे। अन्तको महाप्रतापी रावण भी अनेक दिन घोर युद्ध करनेके बाद मारा गया। देवताओंने रामचंद्रजीकी बड़ी स्तुति और सुमन-वृष्टि की।

रामचन्द्रजीकी आज्ञानुसार विभीषण द्वारा अनेक वस्त्रालंकारों से सुसज्जित कर पालकीके अन्दर श्रीसीताजी लाई गईं। पालकी से उतरते ही सीताजी अपने पतिके चरणोंसे जा लगी। आनन्दके अश्रुओंसे पतिके पूज्य चरण धो दिये।

सीताकी ओरसे चरणोंको हटाते हुए बड़े धीर और गम्भीर

भावसे रामने कहा—"सीते! तुम्हारे प्रति जो मेरा कर्तव्य था, उसे मैंने पूरा किया। अपने सहृदय मित्रोंकी सहायतासे महा-पापी रावणको प्राण-दण्ड दे चुका। परन्तु सामाजिक नियमानुसार अब मैं तुम्हें अपने संग नहीं रख सकता। तुम्हारी जहां इच्छा हो, जा सकती हो। जो स्त्री दो-तीन दिन भी किसी दूसरे के घर अकेली रह जाती है, उसे पुन: ग्रहण करनेमें साधारण मनुष्य भी आपत्ति करते हैं; पर तुम तो रावण-जैसे दुष्ट अत्याचारी के यहाँ एक वर्ष तक रही हो। ऐसी दशामें मैं कदापि लोकाचार विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता।"

रामके इन वचनोंसे सीता पर कठोर वज्रपात हो गया। जो दुःख आजतक अनेक आपत्तियोंके सहने पर भी न हुआ था, वही दारुण दुःख आज अपने प्राणाधारके वचनोंको सुनकर हुआ। असह्य मनोवेदनासे पीड़ित होकर वे अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। कुछ देर बाद शोकका तीव्र वेग रोक कर उन्होंने कहा,—"प्रभो! यह कैसा न्याय? मैं साधारण स्त्रियोंकी तरह विषय-भोगकी प्यासी नहीं। रावणने बल-पूर्वक मुझे हरण किया था, तो भी वह दुष्ट अपनी इच्छा पूर्ण नहीं कर पाया। मेरा उससे अंग-स्पर्श अवश्य हुआ, पर मेरा सतीत्व बिलकुल निष्कलंक है। संकटके समय अत्याचारी पर-पुरुषके अंग स्पर्शको दोष या दूषणमें नहीं गिना जाता। मैं आजतक आपहीके दर्शनके लिये ही अनेक कष्टोंको

झेलकर भी जीती रही। यदि आपके हृदयमें आजकी भांति पहलेही से सन्देह भरा हुआ था, तो हनूमान द्वारा इस सन्देहका हाल क्यों नहीं भेजा? फिर इस कलंकित मुखको लेकर आज मैं आपके सामने क्यों आती? ये शब्द ही मेरे लिये मृत्यु दण्डसे बढ़ कर हैं। प्राणनाथ! रावणने मुझे हरकर मुझ पर जो अत्याचार किया है, उससे भी अधिक अत्याचार आप करेंगे, यदि शास्त्रोंकी दुहाई देकर मुझे त्याग देंगे। हे आर्य! आप तो बुद्धिमान हैं, पर मेरी समझमें आपका यह विचार ऋषियोंकी आज्ञाओंके विपरीत है। प्राणनाथ! मैं इसके लिये आपसे क्षमा न मांगकर अपने निष्कलङ्क सतीत्वका प्रमाण दूंगी। आपने जो इस विशाल जन-समुदायके सम्मुख मेरे सतीत्व पर सन्देह किया है, उसका खण्डन किये बिना मैं मरनेको भी तैयार नहीं हूँ। अभी आपको दिखलाती हूँ कि अत्याचारी राक्षसोंके बीचमें रहकर भी मैं पूर्ण सती और निष्कलंक हूं। देवर लक्ष्मण! अति शीघ्र मेरे लिये चिता तैयार करो। उसमें प्रवेशकर संसारको मैं अपने विशुद्ध सतीत्वका परिचय दूंगी।

चिता तैयार होते ही—

"जो मन, बच, क्रम अस मन माही। तजि रघुवीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु! सबकी गति जाना। मो कहं होहु श्रीखण्ड समाना॥"

कहती हुई वीर-क्षत्राणी जनक-दुलारी पतिके चरणोंका ध्यानकर

धधकती चितामें कूद पड़ी। बस, एकाएक अग्निदेव भगवती सीताको संगमें लिये चितासे बाहर निकल आए और नम्रता पूर्वक रामचन्द्रजीसे बोले—भगवन्! सीता निष्कलंक है। इसके सतीत्वका साक्षी मैं हूं। पृथ्वी पर आजतक कोई भी स्त्री अपने सतीत्वकी ऐसी कठिन परीक्षा नहीं दे सकी, जैसी आज सीताने दी है। इसे सहर्ष अंगीकार कीजिए।

अग्निदेवके अन्तर्धान होते ही रामने सीताको गले लगाते हुए कहा—"देवि! इसमें मेरा कोई अपराध नहीं। यह जानते हुए भी कि तुम सती हो, मैंने तुम्हें कठोर वचन कहे, इसलिये कि संसार और समाज तुम्हें कलंकिनी कहकर तुमसे घृणा और मेरा उपहास न करे। इस अग्नि-परीक्षासे तुम भविष्यमें आने वाली सन्तानके लिये एक निष्कलंक आदर्श रमणी प्रमाणित हो गईं। इसी कठिन परीक्षा की बदौलत संसार की स्त्रियाँ तुम्हें अपनी पथ प्रदर्शिका मानकर तुम्हारे पवित्र चरित्र का अनुकरण करेंगी और भोलेभाले भाई निर्दोष स्त्रीको त्यागनेके पहले सहृदयतासे काम लेंगे।

इसके बाद भगवानने लक्ष्मणसे कहा—"भाई! वनवासका अन्तिम दिन निकट है। अतएव, विभीषणका राज्याभिषेक कर अयोध्या चलनेकी तैयारी करो। अवधि बीतने पर भाई भरतसे भेंट न होगी।"

लक्ष्मणने रामकी आज्ञाका पालन किया। विभीषणके दिये हुए 'पुष्पक विमान' पर अनेक बन्दर और ऋक्ष सेनापतियों सहित चढ़कर भगवान् अयोध्यापुरीमें अवधिके ठीक अन्तिम दिन आ पहुँचे।

अयोध्यामें राम-लक्ष्मणके पहुंचतेही आनन्दका समुद्र उमड पड़ा। प्रजाने राम, सीता और लक्ष्मणकी आरती उतारी। भरत और शत्रुघ्न श्रद्धा और भक्तिके साथ उनके पैर पखारे।

भरतके विशेष अनुरोध एवं प्रजाकी विनीत प्रार्थनासे रामचन्द्रजी सिंहासन पर विराजमान हुए। बड़े समारोह और धूमधामसे अयोध्याके सूने सिंहासनको प्रजारंजक रामचन्द्रजीने अलंकृत किया। सब माताओंको इससे अपार हर्ष हुआ।

सिंहासन पर बैठतेही रामने जिस न्याय और प्रेमसे राज्य किया, वह संसारके इतिहासमें एकही आदर्श शासन है। आजतक किसी राजाने रामराज्यसे उत्तम शासन नहीं किया। उनकी प्रजा-वत्सलता एवं नीति-निपुणता की सुयश-गाथा आज भी भारतके घर-घरमें भक्तिके साथ गाई जाती है। आज बात-बातमें 'राम-राज्य' की उपमा दी जाती है।

सब दम्पतिका जीवन आनन्दके साथ बीतने लगा। सीता

अपनी अनन्य सेवासे पतिको आनन्दित करने लगी। उजड़ी हुई अयोध्या पुनः हरी-भरी हो गई।

समय पाकर सीताजी गर्भवती हुईं। धीरे-धीरे गर्भके दिन भी पूरे होने लगे। किन्तु, हाय! सीताके भाग्यमें सुख कहाँ? उन्हें गर्भावस्थामें भी अनेक यन्त्रणाओंका सामना करना पड़ा।

एक दिन रामचन्द्रके गुप्त चर 'दुर्मुख' ने आकर यह खबर दी कि सीता पर अब भी प्रजा सन्देह करती है। वह आप पर अब भी कलंक लगाती है। सरल-स्वभाव रामने 'दुर्मुख' की बात पर विश्वास कर लक्ष्मणको बुलाया और उन्हें सीताको वन में छोड़ आनेकी आज्ञा दी।

भगवान् रामचन्द्रकी आज्ञा से गर्भावस्था में ही सीता वनवासिनी हुई। भाईकी आज्ञासे सीताको जङ्गलमें छोड़कर जब लक्ष्मण लौटने लगे, तब सीताने उनसे पतिके पास जो सन्देश भेजा, वह सीताके पूर्ण सती होनेका समर्थक है। सीताने कहा—"भाई! तुम व्यर्थ क्यों रुदन करते हो? मुझे अपने पूर्व जन्मके पापोंका फल मिल रहा है। अनेक वार पतिदेवने परीक्षा ली। सभी परीक्षाओंमें मैं शुद्धाचारिणी प्रमाणित हुई। फिर भी आज वे मुझे त्याग रहे हैं। यह मेरे भाग्यका दोष है। मैं अपने स्वामीकी आज्ञा पर दुःख नहीं प्रकट करती, क्योंकि उनके साथ रहनेसे मुझे वनका कष्ट भी सुख ही प्रतीत होता है। यदि मेरे

अंतःकरणको पीड़ा पहुंचाने वाली कोई बात है, तो सिर्फ यही कि अब प्राणाधारके आराध्य चरणोंके दर्शन दुर्लभ हो गये। चाहे जो हो, पतिकी आज्ञाका पालन करना पत्नीका प्रधान धर्म है। वत्स! जाओ, उन्हें मेरा सहस्र बार प्रणाम कह देना और यह भी कहना कि मैं उनकी एक दासी हूं। इस दुःखिनी दासी पर उन्हें अवश्य दया रखनी चाहिये। मुझे अपने चरित्र की शुद्धताके सम्बन्धमें पुनः कोई प्रमाण देनेकी कुछ ज़रूरत नहीं है। कारण, मुझे विश्वास है कि वे मेरे चरित्र पर कभी स्वप्नमें भी सन्देह नहीं करते। केवल लोकरंजनके लिये उन्होंने प्रजाकी बात मानकर मुझे निर्वासित किया है।"

अन्तको लक्ष्मणने व्यथित हृदयसे सीताको प्रणाम किया और अयोध्याकी ओर चल पड़े। इधर सीता भी पति-वियोगसे अधीर हो वहीं पर मूच्छित हो गई।

मुनिराज वाल्मीकि उसी मार्गसे आ रहे थे। अचानक एक लावण्यवती ललनाको मूच्छितावस्थामें देखकर उनका हृदय दयासे भर आया। उन्होंने तपोबलसे तत्क्षण सीताको पहचान लिया। योग-बलसे सीताकी सम्पूर्ण कहानी जान ली। अपने सिद्ध कमण्डलके पवित्र जलके छींटोंसे सीताको सचेत कर परम अनुराग प्रकट किया और उन्हें अपनी कन्याके समान पालनेका वचन देकर अपने आश्रमको ले आये।

प्रसव-काल समीप आतेही सीताके दो तेजस्वी बालक उत्पन्न हुए। किन्तु सीताका चित्त प्रसन्न होनेके बदले दिन-पर-दिन खिन्न होने लगा। तेजस्वी मुखमण्डलकी सौंदर्य्य-प्रभा क्षीण होने लगी। विरहिणी सीतादेवी एक-एक कर अनेक ऋतुओंके कष्ट झेलती हुई वहां बारह वर्ष तक रह गईं। उनके नव-जात बालक लव और कुश मुनिवर वाल्मीकि द्वारा शिक्षा पाकर सब विद्याओंके निपुण हो गये।

इधर ससागरा पृथ्वीके सम्राट भगवान् रामचन्द्रने 'अश्वमेध'की तैयारी की। यज्ञ-कर्मका विधिवत् सम्पादन करनेके लिये धर्म-पत्नी की आवश्यकता आ पड़ी। शास्त्रानुसार धर्म पत्नीके स्थान पर सीताकी एक स्वर्णमयी मूर्ति बनवायी गई। देश-देशान्तरके राजे-महाराजों और ऋषि-मुनियोंको निमन्त्रण भेजा गया।

भगवान् वाल्मीकि भी लव और कुशको लेकर अयोध्या पहुँचे। इन दोनों लड़कोंकी तेजस्विता देखकर भगवान् राम और अयोध्या-निवसी अवाक् हो गये। वाल्मीकि मुनिसे पूछने पर सम्पूर्ण रहस्य प्रकट हुआ। फिर क्या, सीताको पुनः अंगीकार करनेके लिये प्रजाने सहर्ष सलाह दी। भगवान् रामचन्द्रने प्रजाकी इच्छाके अनुसार जनकनन्दिनी सीताको पुनः अयोध्या बुलाया। किन्तु,

कुछ दुष्ट प्रकृतिके मनुष्योंने सीताके ग्रहण किये जाने पर इधर-उधर काना-फूसी की। राम यह नहीं चाहते थे कि हमारी प्रजामें एक भी मनुष्य सीताके विपरीत हो। वे प्रसन्नताके बदले शोकके वशीभूत होकर मस्तक नीचा कर विचार-सागरमें गोते लगाने लगे।

अपने पूज्य पतिको दुःखित और नतमस्तक देखकर सीताके धैर्यका बाँध टूट गया। जानकीने बड़ेही करुणापूर्ण शब्दोंमें कहा—"माता वसुन्धरे! अब विलम्ब कैसा? मेरे भाग्यमें सुख बदा ही नहीं है। अनेक बार कठिन परीक्षाएं हो चुकीं, फिर भी मुझ पर अभी तक जनताका अविश्वास है। अच्छा, कोई चिन्ता नहीं, प्रजाके पूर्ण विश्वासके लिये अब मैं अन्तिम परीक्षा दे रही हूं। मैं नहीं चाहती कि मेरे मर जाने पर कोई भी मनुष्य मुझ पर या मेरे पतिदेव पर किसी प्रकारका आक्षेप करे। सभी आँखें खोलकर देख लें—ज्ञानी जनककी कन्या और प्रतापी दशरथकी पतोहू तथा सूर्य्यवंशावतंस मर्यादा-पुरुषोत्तमकी पत्नी आज पाताल प्रवेशके पूर्व अपने सतीत्वकी अन्तिम परीक्षा देती है। मातृभूमि! यदि मैंने तन, मन और वचनसे स्वामीकी सेवा की हो, पर पुरुषकी ओर कुदृष्टि न डाली हो, तो, हे जननि! हे माता पृथ्वी!! मुझे अपनी गोदमें आश्रय दो और मेरे पूर्ण सती होनेकी साक्षी बनो। प्राणेश्वर! इस चरणानुरागिनी दासीका अन्तिम

अपनी प्यारी पुत्री सीताको गोदमें लेकर पाताल चली गईं ।

प्रणाम स्वीकार करो। प्रभो! दया रखना, क्षमा करना, विदा होती हूं, हाय!"

सीताके इतना कहते ही उस स्थानकी पृथ्वी फट गई। उसके अन्दरसे एक दिव्य सिंहासनपर भगवती वसुन्धरा निकलीं और अपनी प्यारी पुत्री सीताको गोदमें लेकर पाताल चली गईं। संसारमें अपनी अक्षय कीर्ति-रूपी अमर देह छोड़कर सीता सदाके लिये विलीन हो गईं।

सम्पूर्ण सभा पत्थरकी मूर्तिकी तरह ताकती रह गई। भगवान् रामचन्द्र अपनी प्रियतमाको धरतीमें एकाएक विलीन होते देखकर उसे पकड़नेके लिये सिंहासनसे झट उठ खड़े हुए, पर शोक! सीता तो भूगर्भमें विलीन हो चुकी थीं!

धन्य सीते! तुमने अपने आदर्श सतीत्वके प्रभावसे झूठे कलंकको मिटाकर अपनी उज्ज्वल कीर्ति संसारमें अमर कर दी। तुम्हारी वह निष्कलंक प्रतिमा आज भी हिन्दू-महिलाओंके हृदय-मन्दिरमें विराज रही है। आज भी भारतकी असंख्य नारियाँ तुम्हारे चरण-चिन्हका अनुकरण कर सौभाग्यशालिनी बन रही हैं।

ॐ
निवेदन।
"सती सीता" का यदि विस्तृत चरित्र जानना चाहतें हो तो हमारे यहांसे निम्न-लिखित पुस्तक अति शीघ्र मंगाकर अवश्य पढ़िये। इन पुस्तकोंके पढ़नेसे आपको अनेक विषयोंका उत्तम ज्ञान प्राप्त हो जायगा।
श्रीराम चरित्र ५॥)
सीताकी अग्नि-परीक्षा ॥=)
महाराणी सीता २॥)
लव कुश १॥)
सब प्रकारकी पुस्तकोंके मिलनेका पता—
एस, आर, बेरी एण्ड कम्पनी
२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

सती सावित्री।

"तां तु पद्मपलाशाक्षीं ज्वलन्तीमिव तेजसा।
न कश्चिद्वरयामास तेजसा प्रतिवर्धितः॥"

(कमल-नयन सावित्री अपनी सतीत्व-शक्तिसे ऐसी
तेजस्विनी थीं कि उस तेजके आंतकसे कोई
भी नरपति उसका पाणिग्रहण करने
को उद्यत नहीं हुआ)

सती सावित्री

अति प्राचीन कालमें भारतवर्षके दक्षिण भागमें मद्र-प्रदेश था। वहांके राजा अश्वपति बड़े धर्मात्मा और प्रजावत्सल थे। उनके पवित्र राज्यमें कहीं फूटका नाम निशान भी न था। सिंह और बकरे एकही घाट पर पानी पीते थे। ऋषि-मुनि निर्विघ्न अपने जप-तपमें लगे रहते थे। किसीको किसी प्रकारका कष्ट न था।

महाराजकी अर्धाङ्गिनीका नाम मालवी देवी था। मालवी पूर्ण शिक्षिता और दयाशीला थी। राज-दम्पतिका जीवन बड़े सुख से व्यतीत होता था। किन्तु आनन्दमय जीवनमें भी एक बड़ी भारी बाधा थी। भविष्यमें इतने बड़े साम्राज्यकी बागडोर सँभालने वाला कोई उत्तराधिकारी न था। महाराज भी दिन-पर-दिन वृद्ध होते जा रहे थे। पुत्रकी चिन्ता ही राज-दम्पतिके लिये चिताका काम कर रही थी।

अनेक ऋषि-मुनियोंसे परामर्श कर महाराजने पुत्रेष्टि-यज्ञ

ठाना। पुत्रेष्टि-यज्ञसे प्रभावान्वित होकर सम्पूर्ण देवता सावित्री-देवीकी आराधना करने लगे। फलतः, जब कि यज्ञ हो रहा था, आहुति-पर-आहुति पड़ रही थी, उसी समय यज्ञ-कुण्डसे एक अत्यन्त तेजोमयी रमणीका प्रादुर्भाव हुआ।

यज्ञ-कुण्डसे एक अलौकिक देवीको अवतरित होते देखकर सबोंने प्रसन्नतापूर्वक उनके चरणोंमें प्रणाम किया। देवीने सबको आशीर्वाद देते हुए अश्वपतिको सम्बोधन कर कहा-"राजन्! अब तुम्हें यज्ञ करनेकी आवश्यकता नहीं है। मेरा नाम "सावित्री" है। मैं तुम्हें वरदान देनेके लिये ही देवलोकसे आई हूँ। माँगो, क्या चाहते हो?"

अश्वपति—देवि! तुम तो घट-घटमें व्याप्त रहने वाली हो। तुम भली प्रकार मेरे मनोरथको जानती हो। दयाकर बुढ़ापेमें इन आँखोंका उजाला एक पुत्र-रत्न प्रदान करो।

सावित्री—राजन्! तुम्हारे भाग्यमें विधाताने पुत्र लिखा ही नहीं। किन्तु तुम्हारी अगाध भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं ही तुम्हें एक कन्या-रत्न प्रदान करती हूँ।

अश्वपति—देवि! वर्षोंकी आशा एक कन्यासे कैसे पूरी होगी?

सावित्री—राजन्! मुझपर विश्वास करो। यह कन्या परम साध्वी और यशस्विनी होगी। संसारमें यह तुम्हारा यश अमर कर देगी। तुम धन्य हो जाओगे। अपने सतीत्व-बलसे यह

अन्तको संसारमें महान आदर्श छोड जायगी।

इतना कहकर वह देवी अन्तर्धान हो गई। महाराज भी पुत्रीकी आशामें मग्न रहने लगे।

यथासमय मालवीके गर्भसे एक सुन्दर तेजस्विनी कन्या उत्पन्न हुई। सारे राज्यमें आनन्दोत्सव होने लगा। घर-घर मंगल-गान आरम्भ हो गया। राज-दम्पतिके हर्षका वारापार न रहा। महाराजने कन्याका नाम 'सावित्री' रक्खा। क्योंकि महा-गायत्री सावित्री देवीके वरदानसे इसकी उत्पत्ति हुई थी।

सावित्री दिन-दिन कलाधरकी भांति बढ़ने लगी। जिस किसीकी दृष्टि इस बालिकापर पडती, वही इसके रूप और शील-गुणकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता और इसे अनेकानेक आशीर्वाद दे जाता। राज-दम्पतिको भोली-भाली सावित्रीकी मनोहर बाल-क्रीडासे स्वर्गीय सुख प्राप्त होता था।

सावित्री जब पढ़-लिखकर सयानी हुई, तब युवावस्थाका विकास उसके अंग-प्रत्यंगसे झलकने लगा। महाराजको उसके विवाहकी सूझी। किन्तु उन्होंने सोचा, 'पुत्रीके ही समान वर भी रूपवान् और गुणवान् होना चाहिये।" उन्होंने ब्राह्मणोंको योग्य वरकी तलाशमें देश-देशान्तर भेजा। परन्तु सावित्रीके

उपयुक्त कहीं भी वर न मिला। उस समय सावित्रीके रूप और गुणका बखान चारों ओर हो रहा था। किसी भी राजा अथवा राजकुमारकी हिम्मत न हुई, जो सावित्री जैसी-सुन्दरी सुशीला सतीके लिये आगे बढ़े। बेचारे ब्राह्मण अनेक स्थानोंकी खाक छानकर वापस लौट आये। महाराज अश्वपति बड़े चिन्तित हुए।

उन्होंने सावित्रीको बुलाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। सावित्रीने लज्जासे सिर झुका लिया। महाराजने कहा—"बेटी! अब विलम्ब न करो, देश-देशान्तरोंमें पर्यटन कर अपना मनोनुकूल पति चुन लो। तुम्हारा पन्द्रहवाँ वर्ष बीत चला। विवाहमें विलम्ब होनेसे समाजमें उपहास होगा। इसलिये, मेरी आज्ञा मानकर तुम कल ही सखी-सहेलियों और शूर-सामन्तोंके साथ शीघ्र यहांसे प्रस्थान कर दो। वापस आकर तुम जिस भाग्यशाली का नाम बताओगी, मैं उसीके साथ तेरा विवाह कर दूँगा।"

पिताकी आज्ञा मानकर सावित्रीने सैनिकों और सखियोंके साथ रथपर सवार होकर प्रस्थान किया।

अनेक राज्य, नगर, ग्राम, वन, पहाड़ और नद-नदियोंको देखती और देशाटन करती हुई सावित्री अपने अनेक दास दासियोंके साथ एक रमणीय तपोवनमें जा पहुँची। तपोवनकी शोभा

पर मुग्ध हो, सावित्रीने वहीं कुछ दिन विश्राम करनेका विचार किया। संयोगकी बात, उसकी दृष्टि एक मुनि-कुमारपर जा पड़ी, जो वहाँसे कुछ ही दूर एक निकुंजके पास हिरनके बच्चोंके साथ खेल रहा था। मुनि-कुमार बालक नहीं, पूर्णवयस्क युवक था। उसके शरीरकी गठन बड़ी सुन्दर थी। उसका तेजस्वी मुखमण्डल अखण्ड ब्रह्मचर्यसे दमक रहा था। सावित्री धीरे-धीरे आगे बढ़ी। तबतक कुछ ही दूर आगे एक पर्णकुटीरके निकट दो अन्धे वृद्ध-दम्पति ईश्वरके ध्यानमें लीन देख पड़े। सावित्री यह सब देखकर बहुत आश्चर्यित हुई। उसने मन्त्रीको बुलाकर कहा—"प्रधानजी! कुछ दिन यहींपर विश्राम करनेकी मेरी इच्छा है। आप कृपापूर्वक जाकर इस बातका पता लगाइये कि यह पवित्र आश्रम किस तपस्वी ऋषिका है।"

राजकुमारीकी आज्ञा पाकर मंत्रीने कुछ दूर आगे खेलते हुए उसी मुनि-कुमारसे पूछा—"हे ऋषि-कुमार! क्या आप कृपा-करके यह बतानेका कष्ट स्वीकार करेंगे कि यह पवित्र आश्रम किस ऋषिका है?"

मुनि-कुमार—महाशय! यह आश्रम शाल्व-देशके राजा 'द्युमत्सेन' का है। वे लगभग अठारह वर्षोंसे राज्यच्युत होकर इस पवित्र आश्रममें तप कर रहे हैं। मैं उन्हींका पुत्र हूँ। नाम मेरा सत्यवान है। आप अपना प्रयोजन तो कहिए।

प्रधान—राजकुमार ! हम मद्र-देशकी राजकन्याके साथ देश-देशान्तरोंमें घूमने निकले हैं। हमारे साथ सैन्य-समाज भी है। हम लोगोंकी प्रबल इच्छा है कि आज इसी पवित्र आश्रममें विश्राम करें। आपके पूज्य पिताके दर्शनकी भी लालसा है।

सत्यवानने प्रधानजीको साथ ले जाकर अपने माता-पितासे परिचय कराया। महाराज द्युमत्सेन मद्र-राजकी कन्याके शुभागमनका हाल सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने सत्यवानको आदेश दिया कि महाराज अश्वपतिकी राजकुमारीके आदर-सत्कारका पूर्ण प्रबन्ध करो।

मंत्रीने वापस आकर सावित्रीसे सारा हाल कह सुनाया। सुनकर सावित्रीको अपार हर्ष हुआ। जिस मोतीकी तलाशमें वह अनेक समुद्रोंका मंथन कर चुकी थी, जिस रत्नके लिये उसने अनेक नद-नदियों और जंगल-पहाड़ोंकी खाक छानी थी, वही अनमोल मोती—वही उज्ज्वल रत्न—आज उसे अनायास ही मिल गया।

रात-भर तपोवनमें विश्राम कर प्रातःकाल सावित्रीने विदा माँगी। तपस्वी-दम्पतिने प्रसन्नताके साथ उसे विदा किया। सावित्री और सत्यवान एक दूसरेके रूपपर मोहित हो गये। मातृ-पितृ-भक्त सत्यवान अपने अतिथियोंको पहुँचानेके लिये कुछ दूर तक गया। रास्तेमें फिर सावित्री और सत्यवानकी आँखें चार हुईं। दोनोंके हृदयमें प्रेमका अंकुर पल्लवित हो गया। किन्तु

किसीने किसीसे अपनी आकांक्षा प्रकट न की।

सावित्रीने प्रधानजीको शीघ्रही मद्र-देश लौट चलनेकी आज्ञा दी। आज्ञानुसार प्रधानजी दल-बल-सहित मद्र-देश वापस आये। पुत्रीको सकुशल लौटी और प्रसन्नचित्त देख महाराज और महारानीको अत्यधिक आनन्द हुआ।

दूसरे ही दिन भरे दरबारमें सावित्रीको बुलाकर महाराजने पूछा—"बेटी, अपने देश भ्रमणका सविस्तर वर्णन सुनाओ। तुमने किस भाग्यशालीको अपना जीवनाधार पति चुना?"

सावित्रीने लज्जासे सिर झुका लिया। संकोचके मारे कुछ बोल न सकी। पिताके फिर प्यारसे पूछनेपर बोली—"पिताजी! शाल्व-देशके अन्धे महाराज राज्य-च्युत होकर अपनी अंधी महारानीके साथ अठारह वर्षोंसे तप कर रहे हैं। उन्हींके सर्व-गुण-सम्पन्न सुपुत्रको मैंने अपने मनमें अपना जीवनाधार पति स्वीकार किया है।"

अश्वपति—हैं, यह मैं क्या सुन रहा हूं! क्या मेरे बाल्य-सखा महाराज द्युमत्सेन अन्धे होकर राज्यच्युत हो गये?

प्रधान—हाँ महाराज, जब दैव-कोपसे उनके दोनों नेत्र जाते रहे, तब उनकी महारानीने भी अपने नेत्र ढक लिये। जिस समय उनके एकमात्र पुत्रका लालन-पालन हो रहा था, उसी समय उनके प्रधान शत्रु चण्डसेनने उनके राज्यपर आक्रमण कर उन्हें राज्य-

च्युत कर दिया। आजकल वे ही अन्ध-दम्पति एकाग्र चित्तसे ईश्वराराधन कर रहे हैं। आदर्श-चरित्र राजकुमार सत्यवान भी श्रद्धापूर्वक माता-पिताकी सेवा कर रहे हैं।

प्रधानजी सत्यवानके विषयमें यह कह ही रहे थे कि इतने ही में ईश्वरेच्छानुसार महर्षि नारद वहाँ आ पहुंचे। नारदजीको देखते ही सब उठ खड़े हुए और सबने श्रद्धाके साथ प्रणाम किया। महाराजने महर्षिको सादर उच्चासन प्रदान करते हुए कहा—"देवर्षि! आज आपका शुभागमन इस राज्यके लिये तो मंगल-जनक है ही, विशेषकर मेरे लिये और सावित्रीके लिये तो अत्यन्त सौभाग्यदायक है। मेरा अहोभाग्य! धन्य यह घड़ी कि लोचन सफल हुए।

नारद—राजन्! आज मेरा शुभागमन विशेष रूपसे सौभाग्य-दायक क्यों है?

महाराजने सावित्रीके विवाहकी सारी कथा कह सुनायी। नारदजीने गम्भीर भावसे तत्क्षण उत्तर दिया—"राजन्! यह सम्बन्ध मेरे विचारसे उचित और उत्तम नहीं है। किसी तरह सत्यवान तुम्हारी सुन्दरी सुशीला कन्या सावित्रीके योग्य वर नहीं हैं। सावित्रीका विवाह भला सत्यवानके साथ? यह कदापि न्याय-संगत न होगा।"

नारदजीके इन वाक्योंको श्रवण कर दृढ़-व्रत-धारिणी सावित्री

से न रहा गया। उसने नम्रताके साथ पूछा—"ऋषिदेव! यह क्यों? कुछ कारण तो बतलाइये।"

नारद—सत्यवान राज्य-वैभवसे रहित है।

सावित्री—मुनिराज! तो इससे क्या? कीचमें मोतीके गिर जानेसे उसकी चमक तो नहीं जाती? फूल धूलमें गिरनेपर भी सदा गमकता ही रहता है। चिथड़ोंमें पड़ा हुआ हीरा भी सदैव दमकता ही रहता है। इसी प्रकार, वे तपाये हुए कंचन हैं, खरादे हुए अमूल्य रत्न हैं।

अश्वपति—बेटी, देवर्षि नारदजीके साथ विवाद करना उचित नहीं। इनका कथन अक्षरशः सत्य होगा। तू जंगल और पहाड़ोंमें रहने योग्य नहीं, राजमहलोंकी शोभा बढ़ाने योग्य है।

नारद—महाराज! आपकी कन्या कोई साधारण कन्या नहीं है। मैं इसकी दृढ़ता और एकाग्रतापर अतिशय प्रसन्न हूं। इसने जिस सत्यवानको अपने मनमें वर लिया है, वह सचमुच संसारमें एक अद्वितीय पुरुष है। किन्तु—

अश्वपति—मुनिराज! इस 'किन्तु' का क्या अर्थ? क्या सत्यवानमें कोई दुर्गुण भी है?

नारद—नहीं महाराज! सत्यवान सर्वगुण-सम्पन्न, सच्चरित्र और जितेन्द्रिय है। किन्तु उसकी आयु बहुत ही अल्प है। आजसे एक वर्ष बाद वह पुरुष-पुङ्गव इस संसारसे चल बसेगा!

देवर्षिके मुखसे ये शब्द सुनकर सभासदोंको काठ मार गया। वे सन्नाटेमें आ गये। किसीके मुखसे एक शब्द भी न निकला। पर सावित्रीके चेहरे पर ज़रा सिकुड़न भी न थी।

महाराजने सचेत होने पर सावित्रीसे कहा—"बेटी! भाग्य बड़ा प्रबल होता है। विधाताको सत्यवानके साथ तेरा विवाह-सम्बन्ध मञ्जूर नहीं है। नारदजीकी बात कभी असत्य नहीं हो सकती। इसलिये, अब तू अपने मनोनीत पतिकी चिन्ता छोड़-कर किसी दूसरे पुरुष-रत्नकी तलाश कर। जान बूझकर मैं तुझे अन्ध-कूपमें नहीं डाल सकता। तुझे भी जान-बूझकर विष खाना उचित नहीं है। प्रत्येक कार्य करते समय भविष्यके विषयमें अच्छी तरह सोच लेना चाहिये।

सावित्रीके लिये यह एक कठिन परीक्षा थी। वेद-माता महा-गायत्री 'सावित्री'के आशीर्वादसे 'सावित्री' का जन्म हुआ था। भला ऐसी शुद्धजन्मा सावित्रीका विचार बदल कैसे सकता था!

आज सावित्रीके एक ही शब्द पर उसके जीवन-मरणका प्रश्न निर्भर है। आज सावित्रीका उत्तर ही भारतकी हिन्दू-रमणियोंका गौरव बढ़ाने वाला अथवा उसे मिट्टीमें मिलानेवाला होगा। किन्तु सावित्री एक आदर्श भारतीय ललना थी; अतः यह कभी सम्भव न था कि सावित्री-जैसी सदाचारिणी देवी केवल क्षणिक सुखके लिये अपने व्रत और संकल्पको छोड़ देती।

उसने कुछ देर सोच-विचारकर उत्तर दिया—"पिताजी! हिन्दू-रमणियोंका विवाह तो बस एक ही बार होता है। चाहे वह मन वचनसे हो या स्वप्नमें हो; मगर होता एक ही बार है। हिन्दू-महिलाने जिसे एक बार अपना पति बना लिया—चाहे मनमें या स्वप्नमें—जिसके पवित्र चरणोंमें अपना तन-मन-प्राण समर्पित कर दिया, चाहे जानमें अथवा अनजानमें, फिर तो वह सदा उसी की होकर रहती है। किसी दूसरेकी ओर दृष्टि डालना भी वह पाप समझती है। अब तो सत्यवान ही मेरे सुख-दुःखके साथी और सत्यवान ही मेरे भाग्य-विधाता हैं। चाहे वे अल्पायु हों अथवा दीर्घायु, मूर्ख हों या बुद्धिमान, दुश्चरित्र हो अथवा सच्चरित्र; मैं तो उन्हें वर चुकी, अब दूसरेकी अंक-शायिनी हो ही नहीं सकती। अब तो मेरे हृदय-सर्वस्व, जीवन-सर्वस्व और भाग्य-सर्वस्व सत्यवान ही हैं।"

सावित्रीके इन शब्दोंको सुन नारदजीने मुस्कराते हुए कहा—"पुत्री! तू धन्य है। मैं तेरी इस तत्त्व-ज्ञान-भरी बातोंपर अतिशय प्रसन्न हूं। तुझ-जैसी सुशिक्षिता सती-साध्वी पर भगवान् भी वज्रपात न कर सकेंगे। मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ, तू चिर-सौभाग्यवती हो। आजसे तू वेद-माता सावित्री-देवीकी पूजा-अर्चना आरम्भ कर दे। वेद-माताने कृपा की, तो तू अवश्य इस कष्टसे उद्धार पा जायगी। मैं भी तुझे सत्यवान ही के साथ

विवाह करनेकी सलाह देता हूं।"

इसके बाद नारदजीने अश्वपतिसे कहा—"राजन्! पुत्रीकी किसी बातका प्रतिवाद न करो। इसे शीघ्रही सत्यवानको समर्पित कर दो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यही कन्या एक दिन तुम्हारे कुलको सूर्यके समान प्रकाशमान करेगी। इसीसे तुम्हारा यश अमर होगा।"

इतना कहकर, सबको आशीर्वाद दे कर, ऋषि-राज ब्रह्मलोक को विदा हुए। अश्वपतिने भी देवर्षिके कथनानुसार सत्यवानके साथ सावित्रीका विवाह कर दिया। सत्यवानके माता-पिताको सावित्री-जैसी सुलक्षणा पुत्र-वधू पाकर अपार हर्ष हुआ।

ससुरालमें आते ही सावित्रीने वस्त्रालंकारोंको उतारकर गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया। उसने सोचा, एक तपस्वी-कुमार-की पत्नीके लिये सुन्दर वस्त्रालंकारोंकी क्या आवश्यकता है? उसके सास-ससुरने उसे बहुत समझाया; किन्तु उसने और कुछ उत्तर न देकर यही कहा कि पतिकी सेवाही पत्नीकी सबसे बड़ी शोभा है।

सावित्री पति-गृहमें प्रवेश करनेके दूसरे ही दिनसे घरका सम्पूर्ण कार्य स्वयं सम्पादित करने लगी। अपने पतिकी सेवाके अतिरिक्त सास-ससुरकी सेवा भी करने लगी। अपने रहते पति-को कोई काम न करने देती। सेवा-कार्यसे जब उसे अवकाश

मिलता, तब देवर्षि नारदके आदेशानुसार एकान्तमें भगवती सावित्री-देवीकी पूजा-अर्चना कर स्वामीकी मंगल-कामना किया करती। दिन-रात उसके हृदयमें केवल स्वामीकी सेवाका ही ध्यान बना रहता। एक मात्र पतिकी मंगल-कामना ही उसकी चिन्ताका विषय बन गया।

धीरे धीरे सावित्रीके विवाहका प्रथम वर्ष समाप्त होने पर आया। उसने नारदजीका वचन स्मरण किया। उसमें केवल एक सप्ताहका विलम्ब था! ऋषि-राजकी बात स्मरण कर उसे बड़ा उद्वेग हुआ। वह चंचल हो उठी। अधीर होकर उसी दिनसे अनशन-व्रत धारण किया।

आजही अनशन-व्रतका अन्तिम दिवस है। आजही देवर्षि-का वह वचन पूरा होनेवाला है। प्रातःकाल नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर सावित्री सास-ससुरकी सेवा करने लगी। सेवा-कार्य समाप्त होतेही वह वेद-माता सावित्री-देवीकी पूजा पर जा बैठी। आजकी पूजा शायद सावित्रीके इस जीवनकी अन्तिम पूजा थी। कलसे ही उसे एक नवीन जीवनमें पदार्पण करना था। कलसे ही संसारमें उसे निराधार हो जाना था!

देवीकी पूजा-अर्चना समाप्त कर वह पति-सेवामें तत्पर हुई।

पति तथा सास-ससुरने परिश्रम करनेसे मना किया। किन्तु वह तो सात दिनोंसे अन्न-जल त्याग कर व्रत कर रही थी। उसने मधुर शब्दों द्वारा पति-देव और सास-ससुरको समझा दिया कि मैं एक अनुष्ठान कर रही हूं।

मध्याह्न-कालके समय, नित्यकी तरह, आज भी, ब्रह्मचारी सत्यवान, जंगलसे लकड़ियाँ तथा फल-फूल लानेके लिये, कुल्हाड़ी लेकर चलनेको प्रस्तुत हुए। यह देख सावित्रीके धैर्यका बांध टूट गया। पतिके पास जाकर अत्यन्त कातर भावसे बोली—"नाथ! आज मैं आपको वनमें अकेले न जाने दूँगी। मेरी बात मानकर आज वनमें न जाइये। यदि आप मेरी बात न मानेंगे, तो मैं भी आपके साथ चलूँगी। बहुत दिनोंसे रमणीय वनकी सुन्दर छटा देखनेकी लालसा है। आज उसे पूर्ण करूँगी। सम्भवतः आपके साथ वन-विहार करनेसे मेरे मनकी चचलता दूर हो जायगी।"

आज अचानक सावित्रीके मुखसे इस प्रकारके शब्द श्रवण कर सत्यवान बड़े आश्चर्यित हुए। बड़े प्रेमसे सावित्रीका पाणि-पल्लव पकड़कर बोले—"प्रिये! आज सात दिनोंसे तुमने कुछ भोजन भी नहीं किया है, मार्गके श्रम-जनित कष्टोंको तुम्हारा यह सहज सुकुमार शरीर सहन न कर सकेगा। लकड़ियाँ और फल-फूल न लानेसे वृद्ध माता-पिता उपवास कर जायँगे। यहा-

दिमें भी बाधा उपस्थित होगी। तुम कुछ देर यहाँ ठहरो। मैं अति शीघ्र वापस आता हूँ।"

किन्तु अन्तमें सत्यवानको सावित्रीका आग्रह स्वीकार ही करना पड़ा। पति-पत्नी दोनों,माता-पितासे आज्ञा लेकर, परस्पर हँसते-बोलते वनकी ओर अग्रसर हुए। अनेक नद-नदी और झाड़ो-झरनोंको पारकर एक सघन जंगलमें दोनों पहुँचे।

सन्ध्या हो चली। भगवान सूर्यनारायण अस्ताचलकी ओर कूच कर चुके थ। अन्धकार भी धीरे-धीरे संसारको काला परदा उढ़ा रहा था। ठीक उसी समय दोनों एक सघन जंगलमें विराजमान थे। फल-फूल एकत्र कर अग्निहोत्रार्थ लकड़ियाँ काटनेके लिये कुल्हाड़ी लेकर सत्यवान पेड़पर चढ़ने लगे।

सत्यवानके वृक्षपर चढ़तेही सावित्रीका दिल दहल उठा। उसकी बाँई आँख फड़क उठी। छाती धड़कने लगी। वह वृक्षके पास जाकर स्वामीकी ओर ऊपर एकटक देखने तथा कुल्हाड़ाका शब्द सुनने लगी। कुल्हाड़ीके प्रहारका शब्द इस समय किसी भावी घटनाकी आशंका सूचित कर रहा था। उस समय सावित्रीके हृदयमें बड़ी अशांति थी।

कुछही देर बाद सत्यवानने लकड़ी काटना बन्द कर सावित्री से कहा—"प्राणाधिके! शरीरमें कुछ पीड़ा सी मालूम हो रही है। लकड़ी काटनेको जी नहीं चाहता।"

पतिके ये वाक्य सुनतेही सावित्रीका माथा ठनका। सारा शरीर काँप उठा, जैसे आँधीमें केलेका वृक्ष। उसने बड़ी शीघ्रतासे हाथ जोड़कर कहा—"नाथ! शीघ्र नीचे उतर आइये। मेरी सौगन्ध, जल्दी उतरिये। नहीं तो, मैं अपना प्राण त्याग दूँगी। जल्दी कीजिये। मेरा शरीर अचेत हुआ जाता है।"

पत्नीके इन शब्दोंको श्रवणकर सत्यवान अवाक् हो गये। किसी तरह, पीड़ाकी उत्तरोत्तर वृद्धि होनेपर भी, नीचे उतर आये। उतरतेही सावित्रीकी गोदमें अपना सर रखकर वे मूर्छित हो गये। सावित्री बेचारी अपने पतिदेवका सर अपनी गोदमें लेकर मन-ही-मन विचारने लगी—"क्या देवर्षि नारदका वचन इसी समय सत्य हो जायगा? क्या इतने दिनोंकी मेरी साधना और तपस्या निष्फल हो जायगी? क्या वेदमाता सावित्री-देवी संकटमें मेरी सहायता न करेंगी? क्या आज सदा के लिये मेरा सुहाग लुट जायगा? हे परमात्मन्! मैं संसारमें कुछ भी नहीं चाहती, सिर्फ अपने सुहागकी भीख चाहती हूँ। प्राणनाथके बिना यह जीवन निकम्मा है। मैं कभी इनके बिना न रह सकूँगी। ऐ मेरे सारे पुण्य! उदय होकर मेरी आँखों के आगे उजाला करो?"

इसी समय सावित्रीको उस अन्धकारमय जंगलमें एक तेजो-मयी मूर्त्ति दृष्टिगोचर हुई। मूर्त्तिको देखतेही सावित्रीने बड़ा

चञ्चलतासे पूछा—"देव ! आप कौन हैं ? इस दुःखिनीके पास पधारनेका प्रयोजन ?"

मूर्त्ति—देवि ! मुझे लोग यमराज और धर्मराज दोनों कहते हैं। प्राणियोंका अन्तिम काल आते ही मैं उन्हें इस संसारसे उठा लिया करता हूँ। आज तुम्हारे पतिके जीवनका अन्तिम दिवस है। अतः मैं इनके प्राणोंको अपने साथ ले जाना चाहता हूँ। तुम्हारे पतिने संसारमें माता-पिता और गुरु तथा जन्म-भूमिके ऋणसे मुक्त होकर संसारमें परोपकारिता और सेवा-व्रतका उच्च आदर्श उपस्थित किया है। अतः ऐसे आदर्श महापुरुषको सादर स्वर्ग ले जानेके लिये आज मुझे यमराजसे धर्मराज बनना पड़ता है। अब तुम रोना-धोना छोड़कर घर लौट जाओ। मैं इनके प्राण लेकर शीघ्र धर्मपुरी जाता हूँ।

सावित्री—भगवन् ! आप मेरे पिताके तुल्य हैं। पुत्रीको पिता कभी विधवा वेशमें नहीं देख सकता। सुनती हूँ, पारसके स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है। क्या आपके दिव्य-दर्शन पाकर भी मैं अभागिनीही रहूँगी ?

धर्मराज—पुत्री ! ऐसा नहीं हो सकता। संसार मेरी न्याय-प्रियताको कलङ्कित करेगा। मेरे'धर्मराज'नाममें एक काला धब्बा लग जायगा। संसारसे पापका भय छूट जायगा।

सावित्री—प्रभो ! फिर मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है ?

धर्मराज—राजपुत्रि! तू तो हर तरहसे दोष-शून्य है। मैंने ही क्या, किसीने भी तुझमें पापका लेश मात्र नहीं पाया। तेरा जीवन विमल है। सतियोंमें श्रेष्ठ और आर्य-कन्याओंमें तू एक आदर्श वीरांगना है।

सावित्री—भगवन्! तब मुझे इस प्रकार क्यों दारुण सन्ताप दिया जा रहा है? पापिनी नहीं, तो वैधव्यकी मार क्यों? कलंकित नहीं, तो घृणाकी बौछार क्यों? आपकी ऐसी रुष्टता क्यों? दया कर मेरे पतिको जीवन-दान दीजिये।

धर्मराज—पुत्रि! मैं तेरी वचन-चातुरीसे अतिशय प्रसन्न हूँ। किन्तु विधाताकी मर्यादामें तिलमात्र भी हस्तक्षेप नहीं हो सकता। अब तेरे पतिका पुनर्जीवन असम्भव है। हां, सत्यवानके जीवनको छोड़कर जो भी इच्छा हो वरदान मांग ले। मैं अवश्य दूँगा।

धर्मराजको इस प्रकार पिघलते देखकर सावित्रीको कुछ धैर्य हुआ। उसने तुरन्त ही कुछ ध्यान-मग्न रहनेके बाद कहा—"दयामय! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे पूज्य सास-ससुरको नेत्र प्रदान करें, उनके नेत्रोंमें शीघ्र दिव्य तेज आ जाय।"

धर्मराज 'तथास्तु' कहकर चलते बने। सावित्री प्रार्थना करती हुई पुनः उनके पीछे चली। अब तो धर्मराजका मन कुछ चञ्चल हो उठा। उन्हें सावित्रीकी इस प्रबल शक्ति पर बड़ा आश्चर्य

हुआ। वे वहीं पर खड़े हो गये। सावित्रीके पास आने पर धर्मराज ने कहा—"पुत्रि! अब तू व्यर्थ प्रयास कर रही है। मैं तुझे परामर्श देता हूं कि उलटे पैर आश्रमको लौट जा।

सावित्री—देव! आप धर्मराज होकर भी मुझे धर्मसे च्युत होनेका आदेश दे रहे हैं? मेरे लिये तो पतिही आधार है, स्वर्ग है, पुण्य है, तप है, मुक्तिका मार्ग है। फिर, पतिको छोड़कर घर लौटना तो मेरे लिये असम्भव है। क्या आपने नहीं सुना है—

"चन्दा तजै न चाँदनी, सूरज तजै न घाम।
अम्बर तजै न श्यामता, निज पति तजै न बाम॥"

सावित्रीकी इस विलक्षण युक्ति और भक्तिपर प्रसन्न होकर धर्मराज बोले—"पुत्रि, मैं तेरी ज्ञान-गरिमासे तृप्त हो गया। अब दूसरा वर भी माँग ले। पर सत्यवानका जीवन न माँगना। वह बात अब मेरे वशकी नहीं रही।"

सावित्री—प्रभो! यदि आप सचमुच प्रसन्न हैं, तो वर दीजिये कि मेरे माता-पिताके सौ पुत्र उत्पन्न हों।

धर्मराज इसबार भी 'तथास्तु' कहकर बड़ी शीघ्रतासे आगे बढ़े। पर यह देखकर उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि सावित्री इस बार भी उनका पीछा कर रही है। जब धर्मराज अपनी धर्मपुरीके निकट पहुंचे, तो बड़े असमंजसमें पड़े। सोचा—"निश्चयही आज यह सती-देवी विधाताका नियम भंग करेगी।"

पीछेकी ओर घूमकर बोले—"सावित्री ! अब आगे मनुष्यकी गति नहीं है। मनुष्यकी पहुंचसे तू दूर निकल आई। तेरी गति समाप्त हो चुकी। अभीतक तो तेरी गति मानव-शक्तिकी सीमाके अन्दर थी, अब तू आगे क़दम बढ़ानेकी चेष्टा न कर। अन्यथा पछताना पड़ेगा। मैं तेरे देखते-ही-देखते यहांसे अदृश्य हो जाऊंगा। अतः अन्तिम बार कहता हूं, घर लौट जा। हठ छोड दे। नियममें हठ नहीं चलता।

सावित्री—क्या मैं योंही लौट जाऊँ ? मैं पतिव्रता हूं, पतिको मृत्युके मुखमें जाते देखकर अकेली कैसे लौट जाऊँ ? धर्मराजके दर्शनका क्या यही फल है ?

सावित्रीके इन वाक्योंको सुनकर धर्मराज स्तब्ध हो गये। किन्तु फिर भी साहस करके बोले—"अच्छा, तो अन्तिम वर मांग कर लौट जा। मगर याद रहे, सत्यवान अब तेरे भाग्यसे उठ गया। लाचार हूं।"

सावित्रीने इस वार सोच-समझ कर यह वर मांगा—"हे धर्मदेव ! यदि आपकी मुझपर यहाँतक कृपा है, तो मुझे एक सन्तान दीजिये, क्योंकि पुत्रके विना मनुष्यकी सद्गति नहीं होती। यह शास्त्रका मत है।"

सावित्रीसे पिण्ड छुड़ाकर अदृश्य होनेके लिये शीघ्रतामें धर्मराजने इस वार विना सोचे-समझे 'तथास्तु' कहकर आगे कदम

बढ़ाया। इसी समय सावित्रीने उनका मार्ग रोक कर कहा—"महाराज! वरदान देकर अब आप उसे वापस क्यों लिये जाते हैं? धर्मराज होकर भला अधर्म क्यों करते हैं? जब आप मेरे प्राणाधार पतिको ही लिये जाते हैं,तब यह बतलाइये कि मैं सन्तानवती कैसे बनूंगी? पतिके बिना सती स्त्रीके पुत्र किस प्रकार होगा? नाथ! पतिव्रताके धर्मकी रक्षा करना भी तो आप हीका धर्म है। क्या विधि-विधानसे सतीत्वकी महिमा कुछ कम है? पति-व्रत भंग होनेसे क्या ब्रह्माका नियम भंग न होगा?"

सावित्रीकी न्यायोचित वाणी सुनकर धर्मराज अवाक् हो गये। काठके पुतलेकी तरह सावित्रीके अलौकिक तेजको बड़े ध्यानसे देखने लगे। कुछ देर सोचकर बोले—"देवि! आज तुमने विधाताका अटल नियम तोड कर मुझे परास्त कर दिया। धन्य है तुम्हारा पतिप्रेम! धन्य है पतिव्रताकी महिमा! आज मैं भी तुम्हारे दर्शनसे कृतार्थ हो गया। सतीकी महिमा सर्वोपरि है। लो, अपने पतिके प्राणोंको वापस ले जाओ। साथही, मेरा यह आशीर्वाद भी है कि अब संसारमें कभी तुम्हें कोई कष्ट न होगा। तुम्हारा पातिव्रत आर्य-महिलाओंके लिये एक महान आदर्श होगा। तुम्हारे सतीत्वका तेज संसारमें सदा अमर रहेगा। तुम्हारा अनुकरण कर संसारकी स्त्रियाँ अपने जन्म सफल करेंगी।"

इतना कहकर धर्मराज सत्यवानके प्राणोंको पाश मुक्त कर

अन्तर्धान हो गये। सावित्री अपनी सफलतापर फूले अग न समाई। उसके तेजसे धर्मपुरीका मार्ग आलोकित हो उठा।

सावित्री अपने स्वामीका जीवन-दान ले वनमें आई। प्राण-संचार होते ही सत्यवान उठ बैठे। सावित्री उनके चरणों पर लोट गई। उन्होंने उसे गलेसे लगा लिया। फिर दोनों प्रेमानन्दमें मग्न होते आश्रमकी ओर चल पड़े।

आश्रममें पहुँचकर सत्यवानने बड़े आश्चर्यके साथ देखा, माता-पिताके नेत्र खुले हुए हैं। झट माता-पिताके चरणोंमें झुक गए। सावित्रीने भी सास-ससुरकी पद-वंदना की। दोनों गद्गद हो गए। सुयोग्य पूत-पतोहू देखकर किसका हृदय आनन्दसे नहीं नाच उठता?

दूसरे ही दिन यह संवाद आया कि चण्डसेन पराजित हो गया, और अपने सेनापतिने राज्याधिकार हस्तगत कर लिया। कुछ काल बीते अश्वपतिके यहांसे भी पुत्रोत्पत्तिका शुभ सवाद आया। सावित्रीके प्राप्त किये हुए सभी वर एक-एक कर सफल हुए—पति जी उठा, सास-ससुर नेत्रवान और राज्याधिकारी हो गए, और पिताको भी पुत्र-लाभ हुआ।

धन्य सावित्री! तुम्हारी अद्भुत ज्ञान-गरिमा, तुम्हारा अखण्ड

पातिव्रत, तुम्हारे अपूर्व सतीत्वकी अजेय शक्ति धन्य है। तुम्हारी ही जैसी सतियाँ असम्भवको भी सम्भव कर सकती हैं, विधाताका अंक मिटाकर सतीत्वकी महिमा दिखा सकती हैं, ईश्वरके अधिकारोंमें भी हस्तक्षेप कर सकती हैं, शास्त्रोंको अपने पीछे पीछे चला सकती हैं और संसारके इतिहासमें विलक्षण-से-विलक्षण परिवर्तन करके प्रकृतिके नियमों पर भी हरताल फेर सकती हैं। तुमने जो महान आदर्श संसारके स्त्री-समाजके सम्मुख रखा है, वह अनन्त काल तक स्थिर रहकर आर्य्य-जाति और आर्य्य-देशका मस्तक ऊँचा रक्खेगा।

———

सूचना

'सती दमयन्ती' का यदि विस्तृत चरित्र जानना हो तो हमारे यहांसे निम्न लिखित दो पुस्तकें अवश्य मंगाकर पढ़िये।

नल दमयन्ती १॥) नल दमयन्ती ॥=)

सती दमयन्ती।

त्वदितरो न हृदापि मया धृतः
पतिरितीव नल हृदयेशयम्।
स्मरहविर्भुजि बोधयतिस्म सा
विरह पाण्डुतया निज शुद्धताम्॥

सीताने अग्निमें प्रवेश करके अपनी शुद्धता प्रकट की थी, इसीसे
दमयन्ती भी कामाग्निमें अपना शरीर जलाती है, जिससे
हृदयस्थित नल को विदित हो जाय कि मैंने स्वप्नमे
भी कभी दूसरे पतिकी इच्छा नहीं की।

सती दमयन्ती
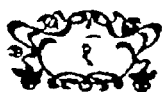
भारतवर्षके जिस भागको आज बरार कहते हैं, पौराणिक समयमें उसीका नाम 'विदर्भ' था। यहाँके राजा भीमदेव बड़े प्रतापी, धर्मात्मा, शीलवान् एवं प्रजावत्सल थे। विदर्भ-देशकी प्रजा उन्हें पितातुल्य मानती थी। महाराज भी प्रजाका पुत्रवत् पालन करते थे। पर वे सब प्रकारसे सुखी होते हुए भी एक वस्तुके अभावसे बड़े दुःखी थे। कभी-कभी उस अभावके कारण उन्हें बड़ी आन्तरिक पीड़ा होती थी। वह अभाव था सन्तानका, जो संसारमें सबसे बड़ा और महादुःखदायक अभाव है।

संयोगवश एक दिन ऋषिश्रेष्ठ दमनक विदर्भ-राज्यमें आ पहुँचे। ऋषिके आगमनका समाचार पाकर महाराजने उन्हें आदर पूर्वक राजमहलमें पधराया। उनकी बड़ी आवभगत की। महाराजकी सेवा और पूजा-प्रतिष्ठासे प्रसन्न होकर ऋषिने कहा—"राजन्! मैं तुम्हारे आतिथ्यसे परम सन्तुष्ट हुआ, कुछ माँगो;

क्या इच्छा है? ईश्वरकी दयासे मेरा वरदान निष्फल न होगा।"

ऋषिराजको प्रसन्न देख महाराज भीमदेवने हाथ जोड़कर कहा,—"मुनिराज! आपकी दयासे मुझे किसी वस्तुकी कमी नहीं है। यदि है, तो केवल पुत्र-रत्न की। मैं प्रायः सोचा करता हूँ कि मेरे बाद इस विशाल राज्यका उत्तराधिकारी कौन होगा, बुढ़ापेमें किसे देखकर मैं शान्ति पाऊँगा? दयामय! यदि आप मुझपर वस्तुत. प्रसन्न हैं, तो कृपाकर मुझे पुत्र-प्राप्तिका वरदान दीजिये।"

कुछ सोचकर मुनिजीने कहा—राजन्! ईश्वरने चाहा, तो तुम्हें चार सन्तानें होंगी—तीन पुत्र और एक कन्या। तुम्हारे पुत्र बड़े तेजस्वी और यशस्वी होंगे। कन्या तो असाधारण होगी। संसारको वह सतीत्वका महान आदर्श दिखलायेगी। अपनी पति-भक्तिके प्रभावसे संसारमें वह देवीकी तरह पूजी जायगी और अपनी आदर्श पति-सेवासे दोनों कुलको गौरवान्वित करेगी। मैं हृदयसे आशीर्वाद देता हूँ, भगवान तुम्हारे मनोरथ भली भांति पूर्ण करें।"

विदर्भके पासही निषध-राज्य था। उस समय भारतवर्षमें वह राज्य भी बड़ा उन्नत था। धन-जन, दल-बल और कला-कौशल—सब तरहसे सम्पन्न था। किसी राज्यसे पिछड़ा हुआ न था। वहांके राजा वीरसेन बड़े पुण्यात्मा, गुणज्ञ, नीतिवान और प्रजा-

प्रिय थे। उनके दो पुत्र थे—नल और पुष्कर। पिताके समान ही दोनों पुत्र भी अद्वितीय रूपवान और बलवान थे।

यथा समय विदर्भ-राज भीमदेवको एक कन्या-रत्न उत्पन्न हुई। महाराजने 'दमनक ऋषिके आशीर्वादको चिर-स्मरणीय बनानेके लिये कन्याका नाम 'दमयन्ती' रखा। दमयन्तीका विश्व-विमोहन रूप महाराज और महारानी तथा सम्पूर्ण प्रजाको आनन्द देने लगा। उसका स्वर्गीय सौन्दर्य रतिका गर्व भी खर्व करने लगा। उसका तेजोमय दिव्य मुखमण्डल शरद्-पूर्णिमाके चन्द्र-देवको लज्जित करने लगा। कलाधरकी भांति वह दिन-दिन बढ़ने और क्रमशः यौवनावस्थाको प्राप्त होने लगी।

इधर वीरसेन अपने ज्येष्ठ पुत्र नलको राज्यका उत्तराधिकारी बनाकर इस असार संसार से कूच कर गये। नलने अबतक जो कुछ शिक्षा पाई थी, उसे वे प्रजाके हितमें व्यय करने लगे। नलकी सुन्दरता, वीरता,धीरता, गम्भीरता, सुशीलता,दानवीरता, प्रजा-वत्सलता और सत्यता की प्रसिद्धि बढ़ने लगी। उनके इन प्रशंसनीय गुणोंकी कीर्ति निषध-राज्यकी सीमा पार कर समस्त भारतमें छा गई।

दमयन्तीके अलौकिक सौन्दर्यका बखान भी चारों ओर होने लगा। उसके रूप और गुणकी चित्ताकर्षिणी गाथा उस समयके सभी बड़े-बड़े राजाओंके कानों तक पहुँच गई। धीरे-धीरे महा-

राज नल के कानों तक भी पहुंची। समासदों, सामन्तों और दूतोंने नलके सामने दमयन्तीके रूप-गुणकी जो प्रशंसा की, वह नलके चित्त-पट पर अंकित हो गई। चारों ओरसे दमयन्तीकी ऐसी प्रशंसा श्रवण कर महाराज उस पर अत्यंत मोहित हो गये। दमयन्तीके बिना उनका एक-एक पल कल्प-समान बीतने लगा।

इधर यह हाल, उधर दमयन्ती भी नलके दिव्य रूप और असाधारण गुणोंकी प्रशंसा सुनकर मोहित हो गई थी। दोनों ही एक-दूसरेसे अपरिचित थे। कभी दोनोंका साक्षात्कार नहीं हुआ था। केवल कानों सुनी बातोंके आधार पर ही पारस्परिक प्रेमका अङ्कुर जम गया था। दोनों ही एक-दूसरे पर हृदयसे निसार हो चुके थे।

यथासमय दमयन्तीके विवाहके लिये स्वयंवर रचा गया। चारों ओर निमन्त्रण-पत्र भेजे गये। देवर्षि नारदने देव-लोकमें जाकर यह खबर सुनाई, दमयन्तीके रूप-गुणकी बड़ाई भी की। देवतागण पहले भी सुन चुके थे, नारदजीके मुखसे सुनकर और भी उत्सुक हो उठे। दमयन्तीका पाणि-ग्रहण करनेके लिये इन्द्रादि-देवता भी विदर्भ-देशकी ओर रवाना हुए। मार्गमें निषध राज नलको अपनी विशाल सेनाके साथ विदर्भ जाते देख इन्द्रादि

देवता सहम गये। सोचने लगे, नल जैसे अनूप रूपवान और अद्वितीय गुणवानके रहते, दमयन्तीको प्राप्त करना असंभव है। स्वयंवर-सभामें नलको देखते हुए वह कदापि किसी दूसरेको न वरेगी। नर-लोकके स्वयंवरमें देवताओंका अपमान होना बड़े दुःखकी बात होगी।

सोचते-सोचते इन्द्रादि-देवता विमानसे उतर पड़े; आगे बढ़ कर महाराज नलके सामने खड़े हो गये। अपने सम्मुख साक्षात् इन्द्र यम, वरुण,कुबेर और अग्निदेवको देखकर महाराज नल रथसे नीचे उतर पड़े। सादर प्रणाम कर विनम्र भावसे बोले,—"देव-गण! कहिये, सेवकके लिये क्या आज्ञा है?"

इन्द्र—राजन्! आज हमलोग अपने एक कार्यकी सिद्धिमें आपकी सहायता माँगने आए हैं। आशा है, आप हम लोगोंको सहायतासे विमुख न होंगे।

नल—कदापि नहीं,इस सेवकका सर्वस्व आप लोगोंकी सेवामे प्रस्तुत है। आज्ञा कीजिये, मैं शीघ्र उसका पालन करूँगा।

इन्द्र—राजन्! आपके वचन पर हम लोगोंको पूर्ण विश्वास है। संसारके एक ओरसे दूसरे छोर तक आपके सत्य और त्याग की दुन्दुभि बज रही है। आपका यश सुनकर ही हमलोग आए हैं। आज आप हम लोगोंके दूत बनकर विदर्भ-राज कुमारी दमयन्तीके पास जाइये। सन्देश यह है—"तुम्हारे साथ विवाह

करनेके लिये देवलोकसे इन्द्र, वरुण, यम, कुवेर और अग्निदेव आदि पधारे हैं। उनमेंसे तुम किसे वरण करना चाहती हो? वस।"

देवराजके इन वाक्योंको श्रवण कर महाराज नल अवाक् हो गये। उनकी आशाओं पर एकवारगी पानी फिर गया। वर्षोंकी लगी हुई आशा क्षण-मात्रमें विलीन हो गई। वे कि कर्तव्य-विमूढ़ होकर इन्द्रका मुँह ताकने लगे।

नलकी यह दशा देख देवराजने कहा,—"राजन्! चुप क्यों हो गये? क्या आप देवताओंके लिये इतना भी त्याग नहीं कर सकते? सत्यवादी होकर भी क्या आप अपने बचनका पालन नहीं कर सकते? यदि आपको कुछ संकोच हो रहा हो, तो स्पष्ट उत्तर दे दीजिये। मैं दबाव थोड़े डाल सकता हूं?"

नल अब और भी असमञ्जसमें पड़े। कुछ देर तक विचार करनेके बाद दृढ़प्रतिज्ञ नलने अपने त्यागका आदर्श दिखलाते हुए देवताओंका दूत होना स्वीकार कर लिया! वे देवताओंके बतलाये हुए मन्त्रोंके बलसे सीधे दमयन्तीके कमरेमें जा पहुंचे। वहाँ पहुंचकर उन्होंने देवताओंका सन्देश दमयन्तीको सुना दिया।

एक अपरिचित मनुष्यके मुखसे देवताओंका सन्देश सुनकर दमयन्तीने तत्काल उत्तर दिया—"ऐ दूत! तुम जाकर देवताओंसे कह दो कि दमयन्ती उनकी पुत्रीके समान है। एक तो, देवताओं को नर-कन्यासे विवाह न करनी चाहिये। दूसरे, दमयन्ती

इस समय स्वाधीन नहीं, बल्कि सर्वथा पराधीन है। उसके तन, मन, हृदय, भाव, प्राण, सब पर निषध-राज नलका अधिकार है। आर्य-ललना एक बार जिसे अपना पति मान चुकी, वह आजीवन उसीकी हो कर रहती है। यदि किसी कारणसे आर्य-महिलाको अपना मनोनीत पति प्राप्त न हुआ, तो वह आजन्म क्वाँरी रहकर अपने हृदय-देवताके शुभ नामकी पवित्र माला जपती रह जायगी, पर कभी दूसरेका स्वप्न भी न देखेगी, और उसी हृदयाराध्यको जपते-जपते इस संसारमें एक उज्ज्वल आदर्श छोड़ मरेगी।"

दमयन्तीकी ऐसी प्रेमपूर्ण अटल प्रतिज्ञा सुनकर नल अत्यंत प्रसन्न हुए। वे मन-ही मन दमयन्तीके पतिव्रत और अपने सौभाग्य की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। उन्होंने कई तरहके प्रलोभनोंसे दमयन्तीको डिगाना चाहा, मगर वह हिमालयकी तरह अटल निकली।

अन्तको हार मान कर नल लौट आए और देवताओंसे दमयन्ती का निश्चय सुना दिया। देवताओंके क्रोधका ठिकाना न रहा। वे लोग इस अपमानका बदला लेने पर तुल गये। नलका रूप धारण कर सब लोग स्वयंवर-सभामें जा विराजे।

यथासमय रूप और गुणकी अधिष्ठात्री दमयन्ती जयमाल लिये रंग-शालामें सखियोंके साथ पधारी। उसके पधारते ही सब की दृष्टि उसीके अनुपम सौन्दर्य-सागरमें डूब गई। पिताकी आज्ञा

से अपने योग्य पति चुनकर उसे जयमाल पहनानेके लिये जब वह आगे बढ़ी, तब एक स्थान पर एक ही रूपके छः राजाओं को देखकर बहुत चकराई। पर कुछ देर सोचकर उसने स्थिर किया कि यह देवताओंकी जालसाजी है। उन्होंने मुझे भ्रममें डालनेके लिये ही यह कपट-जाल बिछाया है। उसने तत्क्षण हाथ जोड़कर दीन भावसे कहा,—"हे देवगण! मैं आपके दूत द्वारा पहले ही कहला चुकी हूं कि आपलोग मेरे पिता तुल्य हैं। भला पिताके साथ कन्याका विवाह कैसा? यदि आप लोग सचमुच देवता हैं, तो धर्मका विचार अवश्य ही रखते होंगे। कृपा करके मेरे सती-धर्मकी रक्षा कीजिये। मैं निषध-राजको अपने मनमें वर चुकी हूं। उनके अतिरिक्त यह जयमाला किसीके गलेकी शोभा नहीं बढ़ा सकती। मैं अन्तिम बार कहती हूं कि एक सतीको छेड़नेका इरादा छोड़कर अति शीघ्र आपलोग प्रत्यक्ष हो जाइये। अन्यथा......

दमयन्ती इतना ही कह पाई थी कि देवगण सतीकी महिमा समझकर भयके कारण नक़ली रूप छोड़ झट असली रूपमें प्रकट हो गए। दमयन्तीने शीघ्र आगे बढ़कर अपने मनोनीत पति को जयमाल पहना दिया। फिर क्या, चारों ओर मंगल गान होने लगा। बधावे बजने लगे। शुभानुष्ठान होने लगे। देवताओंने प्रसन्न हो इस युगल जोड़ीको कोटि-कोटि आशीर्वाद प्रदान कर देवलोक

को प्रस्थान किया।

इन्द्रादि देवताओंको स्वर्गकी राहमें कलि और द्वापरसे भेंट हुई ; इन्द्रने विमान रोक कर उनसे पूछा—"इस तरह उत्सुकताके साथ तुम दोनों कहाँ जा रहे हो?" उत्तरमें द्वापर और कलिने कहा—"देवराज! हमलोग विदर्भ-देशको राज-कन्याके स्वयंवर में जा रहे हैं।"

देवेन्द्रने मुस्कुराते हुए कहा,—"व्यर्थ कष्ट न करो। स्वयंवर समाप्त हो गया। दमयन्तीने निषध-राज नलको वर लिया। हम-लोग भी स्वयंवरसे ही आ रहे हैं। अबतक तुमलोग कहाँ थे?"

देवराजकी इन बातोंको सुनकर कलि और द्वापर हाथ मल कर रह गये। उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। द्वापर तो कुछ शान्त रहा; किन्तु कलिसे यह भयंकर अपमान न सहा गया। वह क्रोधसे अधीर हो कर बोला—"बिना हमलोगोंके पधारे स्वयंवर-सभा क्यों समाप्त कर गई? मैं इसका बदला जरूर लूँगा।"

इतना कहकर कलि और द्वापर निषद-राज्यकी ओर चल पड़े। इन्द्रादि देवता भी मुस्कुराते हुए स्वर्ग-लोककी ओर रवाना हुए।

इधर दमयन्तीको साथ लेकर महाराज बड़ी धूम-धामसे निषध-राज्यमें पहुँच गये। राज्यमें चारों ओर आनन्दकी मधुर धारा प्रवाहित हो चली। राजमहलमें विविध भाँतिके मंगल

अनुष्ठान होने लगे। महलमें अनेक दास दासियोंके होते हुए भी दमयन्ती रात-दिन सुचारु रूपसे पति-सेवा करने लगी। दाम्पत्य-जीवन बड़े आनन्दसे व्यतीत होने लगा। दोनोंके मनोरथ पूरे हो गए।

यथासमय दमयन्तीके एक बालक और एक बालिका हुई। दोनों सन्तानें माता-पिताको अपार हर्ष देने लगीं। पुत्रका नाम 'इन्द्रसेन' और पुत्रीका 'इन्द्रसेना' पड़ा। दोनों बड़े ही सुन्दर, बड़े ही सुशील और बड़े ही सुलक्षण-सम्पन्न थे।

इधर कलि दिन-रात नल-दमयन्तीको सतानेकी चेष्टामें लगा रहता था। किन्तु एक पतिपरायणा आर्य ललना और परम धार्मिक सत्यवादी राजाको अपने फन्देमें लाना कलिके लिये कोई सुलभ कार्य न था। पर संसार परिवर्तनशील है। समय पाकर इसकी चलती चक्कीके अन्दर राजा और रंक दोनोंको पिसना ही पड़ता है। किसी कविने बहुत ठीक कहा है—

संसारमें किसका समय है, एक-सा रहता सदा।
है निशि-दिवा-सी घूमती, सर्वत्र विपदा-सम्पदा॥
जो आज एक अनाथ है, नर नाथ कल होता वही।
जो आज उत्सव मग्न है, कल शोकसे रोता वही॥

ग्यारह वर्षोंके बाद कलियुगको अपना काम करनेका मौका मिला। महाराज नलका छोटा भाई पुष्कर कुछ दुष्ट प्रकृतिका मनुष्य था। वह नलको दिनों-दिन उन्नति देखकर मन-ही-मन जला करता था। कलिने पुष्करको अपना अस्त्र बनाया। नलकी तेजस्विताके सामने तो कलि ठहर नहीं सकता था, पर मन्दबुद्धि कुकर्मी पुष्कर पर उसका जादू खूब चल गया। उसीके द्वारा कलिने नल पर अपना प्रभाव डालना शुरू किया। निर्मल वस्तुको गन्दा करते कितनी देर लगती है? सांसारिक ऐश्वर्यके अधीश्वर, दीन दुखियोंको मुँहमाँगा दान देनेवाले और सत्यके लिये प्राणों त क की आहुति देने वाले महाराज नल पर आखिर कलिने अपना प्रभुत्व जमा ही लिया। वे अपने भाईके प्रस्ताव करने पर उसके साथ जुआ खेलनेको राजी हो गए। वही जुआ, जिसने पाण्डवों और कौरवोंका संहार कर दिया था!

चौपड़ बिछाई गई। दोनों खेलाडी अपने-अपने पाँसे फेंकने लगे। दाँव-पर-दाँव लगने लगे। किन्तु पुष्करका गुप्त सहायक कलि नलको हराता चला गया, नल दाँव-पर-दाँव हारते चले गए। ज्यों ज्यों नल हारते गये, त्यों त्यों चौपड़ खेलनेकी उत्कण्ठा प्रबल होती गई। यहांतक कि नल अपना सम्पूर्ण राज्य हार गये। इतना ही नहीं, उनके तन पर एक धोतीके सिवा और कोई वस्त्र न रह गया!

पतिके जुआ खेलनेका हाल दमयन्ती पहलेही सुन चुकी थी। पतिकी हारका हाल सुनकर और भविष्यके संकटका स्मरणकर उसने अपनी दोनों सन्तानोंको अपने मायके भिजवा दिया था। यह उसकी बड़ी प्रशंसनीय दूरदर्शिता थी।

कलिके प्रभावमें आकर पुष्करने अपने पिता-तुल्य बड़े भाई नलको और माता-तुल्य पूजनीया भाभी दमयन्तीको राज्यसे निकल जानेकी आज्ञा दी। साथ ही, राजाकी हैसियतसे, सम्पूर्ण राज्यके अन्दर, ढिंढोरा पिटवा दिया कि नल-दमयन्तीको यदि कोई अपने यहां आश्रय देगा तो उसे कठिन-से-कठिन दण्ड दिया जायगा। बेचारे नल अपनी सुन्दरी सुकुमारी पत्नीके साथ नंगे सिर, नंगे पैर, नंगे बदन, राज्यसे निकल गए।

अनेक जंगल-पहाड़ोंकी ख़ाक छानते हुए दोनों एक घोर वनमें जा पहुँचे। कुछ फल-मूल खानेके बाद एक वृक्षके नीचे विश्राम करने लगे। दमयन्ती वहाँ भी पतिकी सेवामें जुट गई। उसके हृदयमें उस समय भी पति-सेवाका भाव और ध्यानमें पति-भक्ति का निवास था। उसके लिये जंगलके कँकरीले-कँटीले मार्ग राज-महलके सुन्दर मुलायम गलीचोंसे भी बढ़े चढ़े थे।

कभी-कभी नल अपनी प्राणप्रियाके कष्टोंको देखकर अत्यन्त अधीर हो उठते थे। उसे निरन्तर अपनी सेवामें रत देखकर पश्चात्तापकी ज्वालामें जले जा रहे थे। उन्होंने दमयन्तीको अपने

पिताके घर जानेके लिये बहुत समझाया। किन्तु उस पतिव्रताने प्राणवल्लभको ऐसी विपत्तिमें अकेले छोड़ना स्वीकार न किया। अन्तको विवश होकर नलने उसीका साथ छोड़ देना निश्चित किया। कलिने नल पर अपनी पूरी सवारी कस ली। फिर बुद्धि ठिकाने कहाँ ?

संयोगसे एक दिन उन्हें एक तालाबके पास कुछ सुन्दर पक्षी परस्पर किलोल करते हुए देख पड़े। नल उन्हें बेचकर भोजनकी सामग्री खरीदनेके विचारसे पकड़नेके लिये धीरे-धीरे आगे बढ़े और अपनी धोती खोलकर उन पक्षियों पर फेंक दिया। प्राण-भयसे पक्षी तो धोतीके साथ ही उड़ गये, और नल नंगे-धड़ंगे आसमान ताकने लगे। समयके फेरसे जो एक दिन बड़े भारी राज्यका अधीश्वर था, वह आज वस्त्र-हीन होकर हताश दृष्टिसे आकाश की ओर ताक रहा है! अदृष्टका कुचक्र कैसा विकराल है!

किसी प्रकार वृक्षके पत्तोंसे अपने शरीरको ढककर नल अपनी प्राणवल्लभाके पास आये। सारी कथा कह सुनाई। सुनकर दमयन्ती को बड़ा कष्ट हुआ। वह अपने प्राणाधारको नग्नावस्थामें न देख सकी। झट अपनी साड़ीका आधा हिस्सा फाड़कर दे दिया।

दमयन्तीकी साड़ी फटते देखकर नलकी छाती फटने लगी, आँखोंसे अश्रु-धारा बह चली। अपने भाग्यको बहुत कोसा। अपनी करतूतों पर मन-ही-मन बड़ा पश्चात्ताप किया। अन्तको विलख

कर रो पड़े। पतिके नेत्रोंमें अश्रु धारा देखकर दमयन्ती अधीर हो उठी। उसने नलके चरण पकड़कर कहा,—"नाथ! चिन्ता न कीजिये। भाग्यमें जो लिखा है,वह तो भोगनाही पड़ेगा। मेरे रहते आपको किसी तरहके संकटका सामना न करना पड़ेगा। मैं आपके साथ छायाकी भाँति रहकर सदैव आपके सुख-दुखमें शामिल रहूंगी और आपको सुख पहुचानेकी पूरी चेष्टा करूँगी।"

संध्या समय एक वृक्षके नीचे विश्राम करनेके लिये दोनों लेट गये। दमयन्ती दिन-भरकी थकी-माँदी थी ही,बेखबर सो गयी। वह अपने पतिको दोनों भुजाओंमें बाँधकर बड़े सुखसे सोई थी। पर नलकी आँखोंमें नींद कहाँ? वे तो चिन्ताकी तरंगोंमें डूबते-उतराते थे। बहुत देरकी उधेड़-बुनके बाद उन्होंने दमयन्तीको उसी अचेतावस्थामें ही छोड़ देना निश्चित किया।

रोते हुए नल उठ खड़े हुए और उस निर्जन-काननमें प्राणोंसे प्यारी पत्नीको ईश्वरके भरोसे छोड़कर चल दिये। कुछ दूर जाने पर उन्हें पत्नीका मोह हुआ, किन्तु हृदयको पत्थर बनाकर वे फिर न लौटे।

जब दमयन्तीकी आँखें खुलीं,तो वहाँ पर अपने पतिको न देख वह चारों ओर तलाश करने लगी। जब कहीं भी पता न लगा, तो विलाप करने लगी। उसके विलापसे जंगलके पशु-पक्षी भी व्याकुल हो गये। पति-विरहिणी दमयन्ती पागलकी भाँति अपने

प्राणेश्वरकी खोजमें चारों ओर दौड़ने लगी। कुछ दूर जाने पर उसे एक अजगर मुँह फैलाये आता देख पड़ा। उसे देखते ही वह भयसे काँप उठी। उसे अपने मरनेकी चिन्ता तो न थी, किन्तु चिन्ता यह थी कि मरते समय पति-चरणके दर्शन न हुए। फिर यह भी चिन्ता थी कि पतिकी सेवा कौन करेगा? इन्हीं चिन्ताओंसे उसका हृदय जलने लगा।

ईश्वरेच्छा से इसी समय वहाँ एक बहेलिया आ पहुंचा। उस ने एक सुकुमार रमणीको विकराल अजगरके पञ्जे में फँसी देखकर दूरहीसे अजगर पर तीर मारा। अजगरकी जीवन-लीला तो वहीं समाप्त हो गयी।

अब दमयन्तीको कुछ धैर्य हुआ। किन्तु उसी क्षण दूसरी आफत सिरपर मँडलाने लगी। दुष्ट बहेलिया दमयन्तीका अनुपम रूप देखकर अत्यन्त मोहित हो गया। उस हिंसक पापीकी काम-वासना धधक उठी। वह उसे अपनी मुट्ठीमें करनेके लिये व्याकुल हो उठा। पापात्माकी इस घृणित कुवासनाको देख दमयन्ती ईश्वरसे सतीत्व-रक्षाके लिये प्रार्थना करने लगी।

भगवानने सतीकी पुकार सुन ली। तत्क्षण ही दमयन्तीके शरीरसे एक ज्वाला प्रकट हुई। उस प्रचण्ड ज्वालाके तापसे वह दुष्ट बहेलिया उसी क्षण जलकर भस्म हो गया। उसके पापोंका प्रायश्चित्त हो गया।

इस भयंकर विपत्तिसे उद्धार पा कर ईश्वरको धन्यवाद देती और पतिदेवके चरणोंका ध्यान करती हुई वह आगे बढ़ी। अनेक नदी-नालों और जंगल-पहाड़ोंको पार करती हुई वह एक बस्ती-में जा पहुंची। अनाहार रहनेके कारण उसके अंग शिथिल हो गये थे। किन्तु पति-विरहसे व्याकुल होनेके कारण भूख-प्यास की तनिक भी चिन्ता न रही। कुछ वृद्ध वणिकोंके साथ दिन-भर रास्ता चलकर वह चेदि-नगरमें जा पहुंची। वहाँ भी वह पतिकी खोजमें चारों ओर घूमती फिरी। राजपथ पर अकेली बिलखाती फिरती थी। आधी साड़ीसे अपने अंगोंको किसी तरह ढके हुई थी। सिरके केश बिखरे हुए थे। पगली सी चारों ओर पतिका पता पूछती चलती थी।

चेदि-नगरके राजमहलके पास जाते समय एकाएक महारानी की दृष्टि उस पर पड़ गई। अपनी राजधानीमें ऐसी लावण्यमयी रमणीको दर-दर फिरते देख उन्हें बड़ी दया आई। उन्होंने एक दासीको भेजकर दमयन्तीको बुला भेजा। दमयन्तीके आने पर महारानीने उसका परिचय पूछा। उत्तरमें उसने अपने और पतिके वंशका परिचय छिपाकर सारी रामकहानी कह सुनाई। उसकी कारुणिक दशा पर राज-महिषीके चित्तमें बड़ी दया आई। उन्होंने हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—"देवि! मैं अपने सेवकोंको अभी जंगलमें तुम्हारे पतिकी तलाशमें भेजती हूँ,

तबतक तुम इसे अपना ही घर समझो, यहाँ तुम्हें किसी प्रकारका कष्ट न होगा।"

दमयन्तीने महारानीको इस कृपाके लिये अनेक धन्यवाद दिये। उनकी आज्ञाका पालन कर वह पतिके ध्यानमें लीन रहने लगी।

इधर नल भी अपनी प्रियतमासे बिछुड़कर जङ्गल-पहाड़ोंकी खाक छानते और अनेक कष्ट झेलते हुए अन्तमें अयोध्या जा पहुँचे। वहाँके राजासे मिले। सारथीका काम करना स्वीकार किया। रथ हाँकनेमें सिद्धहस्त थे भी। असली नाम तो छिपा रखा, और बाहुक नामसे अवधेशके सारथी बन गए। महाराज ऋतुपर्ण उनके कौशलसे बहुत प्रसन्न रहते थे। किन्तु नलको यहाँ भी शान्ति न मिली। रह-रहकर उनके हृदयमें दमयन्तीकी चिन्ता-ज्वाला धधक उठती थी। खाते-पीते, उठते-बैठते, बोलते-बतलाते, सोते-जागते, चलते-फिरते आठों पहर व्यथित रहते थे।

जब नल और दमयन्तीके वन-गमनका समाचार विदर्भ-नरेश को मिला, तो अत्यन्त दुखित हो उनकी खोजके लिये उन्होंने देश-देशान्तरमें अनेक दूत भेजे। संयोगसे एक दिन सुबाहु नामक दूत चेदि-नगर जा पहुचा। वहाँ उसने अचानक राजमहलके

पास वाले उद्यानमें महारानीके साथ दमयन्तीको देखा। अच्छी तरह पहचान कर उसने चेदिराजके पास पहुँच सम्पूर्ण घटना कह सुनाई। चेदि-राजने बड़े दुःख और आश्चर्यके साथ सारा वृत्तान्त सुना। फिर दमयन्तीको बड़े आदरसे विदर्भ-नरेशके पास भेज दिया।

दमयन्ती अपने पितृ गृहमें पहुँच गई। उसने सम्पूर्ण घटना अपने माता-पितासे कह सुनायी। बेचारे वृद्ध-दम्पतिको पुत्रीकी विपत्तियोंका वर्णन सुनकर महान दुःख हुआ। उन्होंने दमयन्तीके आग्रहसे अपने पुराने, अनुभवी और चतुर दूतोंको नलकी खोज करनेके लिये भेजा।

दमयन्ती अपने प्राणाधारके लिये व्याकुल थी। उसका एक-एक पल कोटि कल्पके समान बीतता था। उसने खाना-पीना तक छोड़ दिया। मनमें यह प्रतिज्ञा कर ली कि जबतक पतिका कुशल-मंगल न सुनूंगी, तबतक अन्न न ग्रहण करूंगी। वह रहती तो राजमहलोंमें थी, पर अपने पतिके कष्टोंका ध्यान कर कभी राज-सी सुख की ओर दृष्टि भी न डालती थी। चटाई ही उसके लिये मखमली सेज थी। महल उसके लिये घनघोर जंगलसे भी बढ़कर था।

विदर्भ-देशका वृज नामक ब्राह्मण भ्रमण करता हुआ महाराज ऋतुपर्णके राज्यमें जा पहुंचा। उसने नलका पता लगानेके लिये

जिस चतुरतासे काम लिया, वह एक गुप्तचरके लिये विशेष प्रशंसनीय थी।

उसने शहरमें प्रवेश कर चारों ओर नलकी निन्दा करनी शुरू की। दमयन्तीके साथ नलने जो-जो अन्यायपूर्ण कार्य किये थे, उनकी चर्चा भी बड़े मार्मिक और तीक्ष्ण शब्दोंमें सबको सुनाने लगा। ऋतुपर्णका सारथी बाहुक एक जगह उस ब्राह्मणकी बातें बड़े ध्यानसे सुन रहा था। ब्राह्मणकी बातें सुन चुकने पर उसके पास जाकर बोला—"क्या दमयन्ती अपने मायके पहुँच गई? अगर वह पतिव्रता है, तो अपने पतिकी निन्दा क्यों करती है? यदि नलने उसे छोड़ दिया, तो भी उसे पति-भक्तिका व्रत निबाहना चाहिये। नलने किसी कारणसे ही छोड़ा होगा।"

बाहुकने उस ब्राह्मणसे दमयन्तीके विषयमें अनेक प्रश्न किए। ब्राह्मणको सन्देह हो गया। उसने बाहुकसे अपना असली परिचय बतानेके लिये बड़ा अनुरोध किया। किन्तु बाहुकने इसके सिवा एक शब्द भी अधिक न कहा कि मैं महाराज ऋतुपर्णका सारथी हूं। किन्तु दमयन्तीकी चर्चामें इतनी दिलचस्पी लेनेके कारण ब्राह्मण बेचारा सदेहमें ही पड़ा रहा। जब शंका बनी ही रही और नलका कहीं भी पता न लगा, तो वह निराश होकर विदर्भ लौट गया।

वहाँ जाकर उसने दमयन्तीसे सम्पूर्ण घटना, शंका-सहित, कह

सुनायी। वह ताड़ गई। उसको अपार हर्ष हुआ। उसने फ़ौरन मोतियोंका एक अमूल्य हार उस ब्राह्मणको पुरस्कार-स्वरूप देकर विदा किया। फिर उसने महाराज ऋतुपर्णको बुलानेका उपाय सोचा। बड़ी देर तक सोचकर उसने प्रधान गुप्तचरको बुला कर कहा—"तुम अभी अयोध्याके लिये प्रस्थान करो। वहाँ जाकर बड़ी सावधानी और चतुरतासे मेरे स्वामीका पता लगाना। पता लग जाने पर अयोध्या-नरेश महाराज ऋतुपर्णसे जाकर कहना कि निषध-राज नलके गायब हो जानेके कारण दमयन्तीका पुनः स्वयंवर होने वाला है। कल ही स्वयंवर होगा। आप भी शीघ्र वहाँ पधारनेकी कृपा करें।"

इतना कहकर दमयन्तीने गुप्तचरको पुरस्कारोंका लोभ देकर शीघ्र विदा किया। चर अयोध्या पहुंचकर नलकी खोज करने लगा। दमयन्तीके बताए हुए लक्षणों और चिन्होंसे जब उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि उस सारथी-रूपमें महाराज नल ही छिपे हुए हैं, तब उसने तत्क्षण महाराज ऋतुपर्णके पास पहुंचकर स्वयंवरका निमंत्रण दे दिया।

दमयन्तीका दुबारा स्वयंवर होना सुनकर महाराज ऋतु-पर्णको महान आश्चर्य हुआ। पर निमंत्रण स्वीकार कर चुकनेके कारण स्वयंवर-समारोहके साथ साथ दमयन्तीका रूप देखनेकी लालसासे विदर्भकी यात्रा करना निश्चित कर लिया। उसी समय

बाहुकको बुलाकर कहा,—"कल ही वैदर्भी-दमयन्तीका पुन स्वयं-वर होने वाला है। क्या कल तुम मुझे वहाँ पहुँचा सकते हो?"

महाराजके मुखसे दमयन्तीके दूसरे स्वयंवरकी खबर सुनकर बाहुक अवाक् हो गया। मानो उसपर वज्रपात हो गया। उसकी छाती धड़कने लगी। मालूम हुआ, शरीरमें जरा भी चैतन्य नहीं है। कलेजेमें बर्छी-सी चुभ गई। लम्बी साँसके रूप में गरम आह निकल गई। महाराजके सम्मुख उसने अपनेको बहुत सभला। किसी तरह हृदयके प्रलयकारी वेगको रोकता हुआ धीर भावसे बोला "आप तनिक भी चिन्ता न करें, मैं आपको रातों-रात विदर्भ-राज्यमें पहुचा दूंगा। आप शीघ्र चलनेकी तैयारी करें। अब स्वयंवरमें पहुचा कर ही दम लूंगा।"

महाराज तैयार होने लगे। बाहुक सोचने लगा—"अवश्य ही इस दूसरे स्वयंवरके संवादमें कोई गुप्त चाल छिपी हुई है। दमयन्ती आदर्श पतिव्रता है। उसका दूसरा स्वयंवर होना नितान्त असम्भव है। यदि दमयन्तीका ऐसा विचार है, तो फिर संसारमें असम्भव कुछ भी नहीं। किन्तु अब तर्क-वितर्कसे क्या फायदा। विदर्भ-राज्यकी राजधानीमें पहुचने पर आप-से-आप सब हाल मालूम हो जायगा। वहाँ पहुंचे बिना यहाँ तो अब किसी प्रकार शंका, संदेह, भ्रम और कौतूहल का निवारण नहीं हो सकता।"

अयोध्यासे शीघ्र ही महाराजका रथ विदर्भके लिये रवाना हुआ। नल रथ हाँकने में बड़े ही प्रवीण थे। घोड़े हवा से बात करने लगे। अपने सारथी का कौशल देख कर महाराज दंग हो गये। उन्होंने मार्ग में ही सारथीको अनेक पुरस्कार देने के वचन दिये। साथ ही, इस कला के सीखनेकी बड़ी उत्कण्ठा भी प्रकट की। नल ने सिखा देने का वचन दिया। महाराज ने कहा—"मुझे भी 'गणित विद्या' का अच्छा ज्ञान है। पाँसे ढालना भी मैं खूब जानता हूँ। मेरा फेंका हुआ पाँसा व्यर्थ नहीं जाता। तुम चाहो तो द्यूत-विद्या मुझ से सीख सकते हो?"

इसी प्रकार बात करते महाराज प्रातःकाल ही विदर्भ पहुँचे, पर राजधानी में कोई भी तैय्यारी न देख अत्यत विस्मित हुए; पर बाहुक नाम धारी (सारथी) 'नल' अत्यंत प्रसन्न हुए।

इधर दमयन्ती ने धीरे-धीरे अपनी एक सुचतुर सखी द्वारा बाहुक के नल होने का संशय दूर करने लगी। जब उसे यह विश्वास हो गया कि सारथी के रूप में मेरे प्राणाधार ही हैं, तब, एक दिन, अपने हृदय के दोनों टुकड़ों को साथ लेकर, नंगे पैर, व्याकुल-हृदय, प्रेम-विह्वल, पति के चरणों में जा गिरी और बोली—"नाथ! अब मैंने आपको पहचान लिया, अभी तक क्यों आप मुझे भ्रम में डाले हुए थे? यह लीजिये, अपने कलेजे के टुकड़ों को संभालिये। मैं आप के वियोग में अधमरी हो रही थी।

शीघ्र ही मेरे जीवन का अन्त होने वाला था। मुझे आप को आज भर-नजर देख कर अपार हर्ष हो रहा है। अन्तिम समय दर्शन की आशा न थी। प्राणेश्वर! अब इस दासी के अपराध क्षमा कीजिये।"

अब नल अपने आपको सँभाल न सके। वे प्रेमसे विह्वल हो आँखों में जल भरकर दमयन्ती को गले लगाते हुए बोले-"प्रिये, यह तुम्हारा नहीं, मेरा अपराध है। मुझसे तुम नहीं, मैं ही तुमसे क्षमा का प्रार्थी हू। मेरे कारण तुम्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा। उस समय हृदयपर अचानक वज्राघात होनेसे मेरी बुद्धि ठिकाने न थी। दुर्दैवने मेरे द्वारा तुमपर यह अन्यायका पहाड़ ढाया। किन्तु अब बीती बातों के लिये तुम्हें भी दुःखी न होना चाहिये। जिस समय मैंने तुम्हारे दुबारा स्वयंवर होने का समाचार सुना, असह्य दु.ख और आन्तरिक वेदना से हृदय चूर-चूर हो गया ; पर अब मैं उसका रहस्य समझ गया।

दमयन्ती—नाथ! ऐसा स्वप्न में भी न समझियेगा कि आप की यह दासी कभी आपके सिवा किसी और की चिन्ता करेगी। आपके गुप्त-रूप से अयोध्या-वास करने का समाचार पाकर ही मैंने आपको बुलाने का यह षडयंत्र रचा था। यदि सचमुच आज मेरा स्वयंवर होता, तो इस विदर्भ-नगरी में तिल रखने की भी जगह न मिलती। किन्तु इस हृदय में सिवा आप के किसी दूसरे

को कभी स्वप्नमें भी स्थान नहीं मिल सकता। यद्यपि मेरे ही कारण आपको महान कष्ट हुआ, परन्तु मैं क्या करती, भाग्यकी रेखासे लाचार थी; और आपहीका क्या दोष, सब विधाताका खेल है।

फिर क्या था, पति-पत्नी दोनों हृदय खोल कर एक दूसरे से गले मिले। प्रवल दाम्पत्य प्रेम ने दोनों के प्रसन्न नेत्रों से हर्ष के गद्गद् अश्रु वहवाये। उस प्रीति का, उस आनन्द का, उस मिलन का, उस उमंग का, उस शुभ अवसर का और उस पवित्र भाव का इस जड़ लेखनी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। धन्य है सच्चा दाम्पत्य प्रेम। इस संसार में वहीं सच्चा आनन्द है।

नल के प्रकट होने का समाचार राजमहल में पहुँचा। दमयन्ती के माता-पिता, भाई-वन्धु, सब को अपार हर्ष हुआ। महाराज नल को देखने के लिये प्रजा दौड़ पड़ी। सम्पूर्ण राज्य में आनन्द छा गया। अयोध्यापति महाराज भी यह मंगलमय संवाद सुनकर दौड़े हुए नल के पास आये। उन्हों ने वड़ी क्षमा-प्रार्थना की। दोनों ही मित्रता के सूत्र में सदा के लिये बँध गये।

वहुत दिनों तक महाराज ऋतुपर्ण विदर्भ-नरेशके अतिथि रहे। उन्होंने नल से रथ हाँकने की वह अद्भुत कला सीख ली। वदले में नल को भी अपनी अद्भुत द्यूत-विद्या सिखा दी। नल को उस विद्या की प्राप्ति से वडा आनन्द हुआ। कारण, उसी विद्या के न जानने से उन्हें दर-दर का भिखारी होना पड़ा था।

कुछ दिनों के बाद नल ने महाराज ऋतुपर्ण को बड़े आदर से विदा किया। स्वयं भी अपने ससुर के विशेष आग्रह से एक बहुत बड़ी सेना के साथ अपनी राजधानी की ओर सानन्द अग्रसर हुए। बच्चे भी साथ गए।

निषध-राज्य के पास पहुचते ही उन्होंने एक दूत द्वारा अन्यायी पुष्कर के पास यह सन्देश भेजा कि नल पुन जूआ खेलने के लिये आया है, और इस बार वह दमयन्ती को भी दाँव पर लगायेगा, यदि जूआ खेलना स्वीकार न हो, तो युद्ध के लिये तैयार हो जाओ, क्योंकि नल इस वार दल-बल के साथ निषध-राज्य की सीमा पर आ डटा है।

दूत के मुख से नल का युद्ध-संदेश सुनते ही पापी पुष्कर की त्योरियाँ चढ़ गईं। उस अहंकारी का सारा शरीर क्रोध से जल उठा। कुछ देर सोच-विचार कर उसने जुआ खेलना ही निश्चय किया। उसे अपनी द्यूत-विद्याका बड़ा अभिमान था। एक वार की विजय से उस का मन बेढब बढ़ गया था। किन्तु उसे इस बात का पता तक न था कि उस समय नल को जुए में हराने वाले कलि और द्वापर थे। उसे यह भी मालूम न था कि इस बार नल द्यूत-विद्या में अद्भुत निपुण होकर आया है।

यथासमय खेल शुरू हुआ। दाँव-पर-दाँव रखे जाने लगे। नल ने द्यूत-विद्या में अद्भुत कौशल दिखाये। पुष्कर क्रमशः

सर्वस्व खो बैठा। अन्तको उसने झुँझलाकर अपने-आप को भी दाँव पर रख दिया। देखते-ही-देखते वह दाँव भी उसके हाथ से निकल गया! भाग्य का फेर इसे कहते हैं!

महाराज नल ने अत्याचारी पुष्कर को कैद कर निषध-राज्य के अन्दर प्रवेश किया। निषध-राज्य की प्रजा, जो अब तक पुष्कर के भयंकर अत्याचारों से पीडित थी, अपने परम प्रिय स्वामी को पुनः पाकर बहुत प्रसन्न हुई। सारे राज्य में आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा।

सती-पार्वती.

अपर्णैव लता सेव्या विद्वद्भिरिति मे मतिः।
ययावृतः पुराणोऽपि स्थाणुः सूतेऽमृतं फलम् ॥

विद्वानोंको "अपर्णा" लता की ही सेवा करनी चाहिये, जिस के कारण पुराने "स्थाणु" में भी अमृत-फल फले [पार्वती का नाम "अपर्णा" (बिना पत्ते की लता) था और शिवजी का नाम "स्थाणु" (ठूठा वृक्ष)—वे "पुराणपुरुष" भी कहलाते हैं—यहाँ अमृत-फल का तात्पर्य्य "सुर-सेनापति स्कन्द" है]

ति प्राचीन कालकी कथा है। हरिद्वारके पास, जहाँ भगवती गंगा हिमालयसे पृथ्वीपर उतरी हैं, किसी समय 'दक्ष' प्रजापतिका राज्य था। दक्ष ब्रह्माके पुत्र और देवर्षि नारदके भाई थे। साथही बड़े प्रतापी, प्रजापालक, न्यायनिष्ठ और पराक्रमी भी थे। उनका आतङ्क संसारके कोने-कोनेमें छा रहा था।

उनके 'सती' नामक एक विश्वविमोहिनी कन्या थी। वह देखनेमें जैसी सुन्दरी थी, गुणोंमें भी वैसीही अद्वितीय थी। सारी प्रजा उसे साक्षात् आदिशक्तिका अवतार ही मानती थी। उसकी तेजस्विता देखकर दक्ष दंग रहा करते और मन-ही-मन अपना भाग्य सराहते थे। किन्तु सतीका बचपन ही से 'वैराग्य' पर प्रेम था। उसने सयानी होनेपर अपनी प्रकृतिके अनुसार ही कैलासपति शंकरको अपना मनोनीत पति चुन लिया; किन्तु दक्षको महादेवजीका अड़बंग स्वभाव पसन्द न था क्योंकि वे सदा सारे अङ्गमें विभूति लपेटे और बाघम्बर धारण किये

रहते थे। इतना ही नहीं, बैलपर चढ़ते, भंग-धतूरा खाते और खोपड़ियों तथा सर्पोंकी माला पहनते और विकट भेषवाले भूत-प्रेतोंके साथ भंगकी तरंगमें मस्त होकर बेकार घूमा करते।

इन्हीं कारणोंसे श्रीशंकरजीसे दक्षराजको घृणा सी हो गयी थी। उन्हें वे कभी देखना तक पसन्द नहीं करते थे। और भी ऐसे ही अनेक कारण थे। सारांश यह कि दक्षको शिवजीके साथ वैमनस्य हो गया था। किन्तु शिवजी तो भंग की तरंग में मस्त रहते थे, उन्हें क्या चिन्ता थ '

जब दक्ष को यह ज्ञात हुआ कि सती ने महादेव को अपना पति चुना है; तो वे क्रोध से बावले हो उठे। उन्हों ने उसी समय सतीके पास पहुँच कर क्रोधके साथ कहा—सती, क्या तुम उस भिखमंगे को बरना चाहती हो? छिः, शीघ्र ही उसे हृदय से निकाल बाहर करो। मैं तुम्हारा विवाह उस पागल के साथ कभ न करूँगा। तुम-जैसी सुकुमार कन्या क्या उस नशा-खोर के हाथ सौपूँगा? छोड़ो उसका ध्यान। वह श्मशान में रहता है, चिता-भस्म सारी देह में लपटेता है, नशे में चूर रहता है; न घर है, न परिवार, कोई सर्व प्रकार से सुयोग्य पति मनोनीत करो।

पिता के इन निष्ठुर एवं मूर्खतापूर्ण शब्दों को श्रवण कर सती के शरीर में आग लग गई। वह दुःख और क्रोध से चंचल हो उठो। पिताकी अनुचित बातोंका उत्तर न दे सकी। सिर नीचा

कर उनके सामने से हट गई। पिताकी बातों से महादेवजी के प्रति उसकी श्रद्धा-भक्ति कम न हुई। बल्कि वह उसी दिन से निरन्तर शिवजी का पूजा-अर्चना करने लगी। उसने निश्चय कर लिया कि हिमालय टल जाय तो टल जाय, शिवजी को वरण करने का व्रत नहीं टल सकता।

एक दिन भगवान भूतनाथ ने सती की पूजा और निष्ठा से प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया और धैर्य देते हुए कहा—"देवि! मैं तुम्हारा सेवा और भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम निश्चिन्त रहो। मैं तुम्हारी प्रेमपूर्ण पूजा बड़ी तृप्तिके साथ स्वीकार करता हू। शीघ्र ही तुम्हारी इछा पूर्ण होगी। कोई तुम्हारा इच्छामें बाधा नहीं डाल सकता।"

इतना कहकर भगवान् भोलानाथ अंतर्धान हो गये। सती उसी दिन से निश्चिन्त और निर्भय हो कर मनसा-वाचा-कर्मणा शिवाराधन में लग गई। निरन्तर महादेवजी के ध्यान में निमग्न रह कर उन्हीं के रूप और गुण की चिन्ता करने लगी।

कुछ दिनों के बाद सती के स्वयंवर का समय आया। महाराज दक्ष ने स्वयंवर में उपस्थित होने के लिये राजे-महाराजे, देवता और गन्धर्व तथा ऋषि-मुनियों को सादर निमन्त्रण भेजे।

किन्तु देवाधिदेव महादेवजीको उन्होंने जान बूझ कर निमन्त्रण नहीं भेजा।

भगवान् भूतनाथ के सिवा सभी देवता, किन्नर, गन्धर्व, राजे-महाराजे, ऋषि मुनि, ठीक समय पर स्वयंवरमें उपस्थित हुए। यथोसमय सती भी रंगशाला में आ पहुँची। सती के पधारते ही एक अलौकिक तेज से सारा सभा-मण्डप जगमगा उठा। उसी समय महाराज दक्षने सती को अपने मनोनीत पति के गले में जयमाल पहनाने की आज्ञा दी। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर सतीने एक बार चारों ओर बड़े ध्यान से देखा। त्रिपुण्ड्र-त्रिशूल धारी त्रयतापहारी त्रिभुवन-लयकारी त्रिपुरारि के दिव्य दर्शन प्राप्त न हुए। मनोरथ के सर्वोच्च शिखर से गिरकर सतीकी कोमल आशा चूर-चूर हो गई। सतीने वहीं पर शंकर का ध्यान किया। प्रेम में मग्न हो गई। तन-मन की सुध न रही। अश्रु-विन्दुओंकी पुष्पमाला शिवजीके चरणों में चढ़ाकर वोली—देव! अब विलम्ब न करो। सती की लाज रक्खो। आओ, दासी की भेंट ग्रहण करो। अपने वचन के अनुसार मेरे व्रत की रक्षा करो। तुम प्रेम-रत्न के पारखी हो, इस प्रेमासक्त हृदय को सनाथ करो।

सती की मानसिक आराधना सफल हुई। झट महादेव जी विचित्र वेश में वहीं प्रगट हुए। साक्षात् शंकरको सामने उपस्थित

देखकर सती ने तत्क्षण प्रसन्नता के साथ उनके गले में जय-माल डाल दी। शिवजीने मुस्कराते हुए उस प्रेमोपहार को स्वीकार किया। वह भक्ति की भेंट—जयमाल—सर्पों की संगिनी बन गई।

दक्ष तो महादेवजी को देखते ही जले-तेल के बैंगन हो गये, किन्तु अब क्या करते, जयमाल तो उनके गले में पड़ चुकी। अब तो सती उनकी हो चुकी।

अनेक ऋषियों और देवतोंके समझाने पर, अन्त को, लाचार होकर, दक्ष ने महादेवजी के साथ, पस्विनी सती का विवाह कर दिया। विवाह होने पर सती प्रसन्न मन से शंकरजी के साथ कैलास चली गई। कैलास पर पहुँच कर सती ने पति-सेवा में ऐसा चित्त दिया कि भगवान शंकर मुग्ध हो गए। उसके अलौकिक आत्म संयम और पवित्र प्रेम तथा सरल हृदय को देख कर उन्हें इतना संतोष हुआ कि सती को समाधि से भी अधिक प्रिय समझने लगे। सती और शिवजी में जो अद्भुत प्रेम था, उसका वर्णन करना शेष-शारदा के लिये भी असंभव है, फिर औरों की क्या कथा?

इधर दक्ष के हृदय में महादेव जी के प्रति शत्रुता की भावना

उत्तरोत्तर जड पकड़ती ही गई। संसार में महादेव जी का महत्त्व कम करने के लिये उन्होंने यज्ञ करनेका निश्चय किया। उन्हें अप-मानित करने के विचार से ही यज्ञ ठाना। यज्ञ की तैयारियाँ होने लगीं। देश-देशान्तर में निमंत्रण-पत्र भेजे गये। सिर्फ महादेव और सती को निमंत्रण-पत्र नहीं भेजा गया। और सब के पास यज्ञ में सम्मिलित होनेके लिये बड़े आदर और आग्रह से निमन्त्रण भेजा गया।

दक्ष के इस यज्ञ का संवाद देवर्षि नारद द्वारा सती को भी प्राप्त हुआ। ऐसे समारोह के अवसर पर मायके जाने के लिये सती लालायित हो उठी। मा-बहनों और सखी-सहेलियों के प्रेमने एक वार सती के हृदय में तूफ़ान पैदा कर दिया। उसने शिवजी के पास जाकर दक्ष-यज्ञ में सम्मिलित होने की अनुमति माँगी। किन्तु शिवजी ने निमंत्रण के अभाव में, घोर अपमान का खयाल कर, सती को जाने से रोका। किन्तु स्त्री का हृदय और मायके का प्रेम! सती के विशेष आग्रह करने पर महादेवजी को लाचार हो कर आज्ञा देनी ही पडी।

अनेक दिव्य वस्त्रों और वहुमूल्य स्वर्णालंकारों से सुसज्जित हो यज्ञ-महोत्सव के दिन ही सती वहाँ जा पहुंची। सती को विना निमन्त्रण आया देख दक्ष भीतर-ही-भीतर जल उठे। उन्होंने सती की बात भी न पूछी। घरमें किसी ने सती का सत्कार तक

नहीं किया। सती ने यज्ञ-मण्डप में अपने पति का अंश कहीं नहीं देखा। उनके रोम-रोम में आग लग गई। दक्ष ने उसी क्षण सती का और उसके पति का बड़े ही कठोर शब्दों में अपमान किया।

सती के लिये यह और भी असह्य हो गया। पतिव्रता सती अपने पतिका अपमान न सह सकी। उसने उसी समय यज्ञ-मण्डप के अंदर ही अपने पातिव्रत के प्रभाव से अग्नि-ज्वाला उत्पन्न कर सब के देखते-देखते अपना क्षण-भंगुर शरीर भस्म कर दिया।

सती के भस्म होते ही यज्ञ-मण्डप में हाहाकार मच गया। पतिव्रता कन्या मंगलमूर्ति है। उसके भस्म होने से यज्ञानुष्ठान का विध्वंस हो गया। सभी इस दुर्घटना के भावी परिणाम पर विचार करने लगे। थोड़ी देर चारों ओर सन्नाटा छा गया। तब तक रनवास में भी कुहराम मचा। दक्ष-पत्नी अपनी बेटी के लिये मूर्च्छित हो गई। बड़े-बड़े देवता और ऋषि इस दुर्घटना के फल स्वरूप भगवान् शंकर को क्रुद्ध समझ कर यज्ञ-मण्डप से उठकर अपने-अपने स्थानको वापस चले। किन्तु ऐसा भयंकर काण्ड होने पर भी दुराग्रही दक्ष ने यज्ञ बन्द न किया। अपने कुछ स्वार्थी सहयोगियोंके साथ फिर दूने उत्साह से यज्ञ करने लगा।

जब सती के भस्म होने का समाचार भगवान भूतनाथ को मिला, तब वे क्रोध से उन्मत्त हो उठे। प्रलय कालका क्रोध प्रगट हुआ। उनके सम्पूर्ण अंग से भयंकर ज्वालाएँ निकलने लगीं।

उन्होंने उसी क्षण इस असह्य अपमान का बदला लेनेके लिये दल-बल-सहित परम तेजस्वी वीरभद्र को भेजा। भगवान शंकर की आज्ञा से वीरभद्र ने जाकर यज्ञ को तहस-नहस कर डाला, दक्ष का वध कर उनके परिवार का समूल नाश कर दिया। यज्ञ-मण्डप में, जहाँ चन्दन और शाकल्यकी चहल-पहल थी, रक्त की कीच मच गई। शिवजी के अपमान का फल अच्छी तरह मिल गया।

भारतवर्ष के उत्तर खण्ड में 'हिमालय' नामका एक अत्यंत विशाल पर्वत है। संसार के सभी पर्वतों से बड़ा होने के कारण वह पर्वतों का राजा माना गया है। दक्षसुता सती ने उसी पर्वतराज हिमाचल के घर जन्म लिया। पर्वतराज की पुत्री होने के कारण "पार्वती" नाम पड़ा। "सती" ने ही पार्वती-रूप में अवतार धारण किया।

पार्वती अत्यन्त सुन्दरी थी। उसका शील-स्वभाव आरम्भ से ही अतीव उत्तम था। कुशाग्रवुद्धि होने के कारण अल्प काल में ही उसने अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया।

पूर्व जन्म के संस्कार के अनुसार उसका लड़कपन से ही वैराग्यपर बड़ा अनुराग था। अतः उसने परम वैरागी महादेवजी

को पति-रूप में प्राप्त करने के लिये बड़ी कठिन तपस्या शुरू की। पार्वती की प्रेम-पूर्ण आराधना और सच्ची तपस्या ने शिवजी का आसन हिला दिया। शिवजी स्वयं उस तपस्विनी के प्रेम की परीक्षा करने के लिये चले। तपोवन में जाकर जब परीक्षा ले चुके, और उसमें वह खरी उतरी, तथा उसे अपने ही प्रेम में तन्मय पाया, तब शिवजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उसे धैर्य प्रदान करते हुए वचन दिया कि मैं तुम्हारी प्रीति से अत्यंत सन्तुष्ट हूँ—तुम्हें अवश्य अंगीकार करूँगा।

देवर्षि नारद द्वारा जब यह संवाद पर्वतराज हिमाचल को मिला, तब वे बड़े ही प्रसन्न हुए। उन्होंने यथासमय बड़े समारोह से पार्वती का विवाह शिवजी के साथ कर दिया। बड़ी धूम-धाम से एक विचित्र बारात आई। सभी देवता बराती थे।

विवाह हो जाने के पश्चात् पार्वती अपने आराध्य पति शंकर के साथ कैलास पर्वत पर चली गई। जो कैलास-शिखर सती के वियोग से निरानन्द और उजड़ा हुआ दृष्टिगोचर होता था, आज वही पार्वती के शुभागमन से पुनः उत्सवमय तथा समृद्धिशाली हो गया। पार्वती पति की सेवा में तन-मन-वचन से लग गई। उनके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझने लगी। वास्तव में पति-सेवा ही स्त्री-समाज का गौरव है। स्वामी ही स्त्री के लिये सब सुखों का दाता है। वही स्त्री की शोभा है।

एक बार भगवान् भूतेश योगासन पर समाधि-मग्न विराजमान थे। इसी समय राक्षसो के अत्याचार से पीड़ित देवतागण शंकर-प्रिया पार्वती की शरण में आये—"त्राहि त्राहि" पुकारने लगे। पति की समाधि भंग करना उचित न समझ पतिव्रता पार्वती ने स्वयं रणचण्डी का रूप धारण कर देवतों को अभय किया।

यथासमय पार्वती के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम "कार्तिकेय" पड़ा। बालक कार्तिकेय पिता के गले में लिपटे हुए साँपों के साथ किलोल करने में बड़ा आनन्द प्राप्त करता था। उसने अल्पकाल में ही अपनी विलक्षण वीरता का परिचय देकर माता-पिता को सन्तुष्ट कर दिया। उसकी अद्भुत शक्ति का चमत्कार देखकर भगवान शंकर बड़े प्रसन्न हुए।

युवावस्था में कार्तिकेय ने 'तारक' दैत्य का संहार किया। तारक के अत्याचार से देवगण बहुत घबरा गये थे। वह पापी निर्भय होकर अत्याचार करता फिरता था।

देवता और ऋषि आदि उस दैत्य के पापाचार से पीडित हो पुनः पार्वती की शरण में आए। फिर त्राहि-त्राहि की पुकार मचाकर बोले—"माता! दैत्यों का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। तारकासुर बड़ा उत्पाती है। इस दुष्ट राक्षस के पंजे से जल्दी उबारो। इसे दूसरा कोई न मार सकेगा। भगवान कार्तिकेय

को रणभूमि में भेजे विना अव हम लोगों की रक्षा नहीं हो सकती।"

पार्वती ने देवतों का आर्त्त-नाद श्रवण कर वीर माता की तरह प्रिय पुत्र कार्तिकेय से कहा—"वेटा,देवगण तुम्हें अपना सेनापति वनाना चाहते हैं। जाओ, असुरोंका संहारकर देवतों को अभय करो। मेरे पवित्र दूध की लाज रक्खो। परोपकार में तुम्हारा शरीर लग जाय, तो मेरा मातृत्व सफल हो जाय।"

माता की आज्ञा पाकर कार्तिकेय प्रसन्न मन से उठ खड़े हुए। माता के चरणों की धूलि मस्तक पर चढ़ा कर असुरों का संहार करने के लिये देवतों के साथ तत्क्षण ही चल पड़े। उस समय उनके शरीर से एक अद्भुत तेज वरस रहा था।

यथासमय देवासुर-संग्राम आरम्भ हुआ। दोनों तरफ़ के वीर अपनी-अपनी वीरता की वानगी दिखाते हुए वीर-गति को प्राप्त होने लगे। रुण्ड-मुण्ड से पृथ्वी भर गई। रक्त की नदियों के तट पर रणचण्डी नृत्य करने लगी। कुछ ही देर के वाद युद्ध-क्षेत्र में तारकासुर के साथ कार्तिकेय का सामना हुआ। दोनों में भीषण युद्ध हुआ। ऐसा तुमुल युद्ध कभी किसी ने देखा न था। दोनों ओर से भयंकर वाण-वृष्टि हो रही थी। चारों ओर वाण-जाल के मारे अन्धकार छा गया था।

अन्त को वीर-श्रेष्ठ कार्तिकेय के अमोघ वाणों ने तारक को

यमपुर भेज दिया। इस बार भी कुमार कार्तिकेय की सहायता से देवतों ने दैत्यों पर प्रभावोत्पादक विजय प्राप्त की। दैत्यों को पराजित कर सभी देवता शंखध्वनि करते निज-निज लोक चले गये।

अपने पुत्र की विजय से महादेव और पार्वती को अपार हर्ष हुआ। पार्वती अब अपने को यथार्थ पुत्रवती समझने लगी। कार्तिकेय के कारण ही पार्वती "जगन्माता" कहलानेकी अधिकारिणी हुई, क्योंकि जगत् को त्रास देने वाले दैत्यों का संहार कार्तिकेय ने ही किया, जिससे जगत् का कल्याण हुआ, और संसार से अत्याचार का नाम-निशान मिटा।

कुछ काल के बाद पार्वती के एक और पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सब की सलाह से "गणेश" रखा गया। शिवजी के भूत-प्रेत-गण के सेनापति 'गणेश' ही थे। वे पिता के बड़े आज्ञाकारी थे। राम-नाम में अनन्य भक्ति होने के कारण 'गणेश' देवतों में सर्वश्रेष्ठ माने गये। वे बड़े भारी विद्वान् और प्रसिद्ध लेखक भी थे। व्यासजी ने महाभारत उन्हीं से लिखवाया था। इन्हीं गुणो के कारण वे देवतों में सब से प्रथम पूजा पाने के अधिकारी हुए। सयाना होने पर माता-पिता का स्नेह विशेष रूप से उन्हीं पर रहने लगा। वे माता-पिता के बड़े लाड़ले थे। लड्डू ही उन्हें खाने को मिलता था। लड़कपन से मोदक-प्रिय थे। माता-पिता की बड़ी सेवा करते थे।

वास्तव में सती रमणी के पुण्य-प्रताप से सम्पूर्ण परिवार सुखी रहता है। उसके आदर्श चरित्र से देश और समाज का परम कल्याण होता है। वह अपने शुद्धाचरण से ही स्वजाति और स्वदेश की सेवा कर सकती है। उसका जीवन ही संसार के लिये एक महान उपदेशक है। हिमाचल-नन्दिनी पार्वती ऐसी ही सतियों की शिरोमणि थी। शंकर-प्रिया पार्वती का चरित्र और उसकी संतानों का चरित्र संसारको अनन्त काल तक शिक्षा-प्रद सन्देश सुनाता रहेगा। भगवान करे, पार्वती की तरह वर्तमान भारतकी माताएँ भी अपने पुत्रों को वीर और परोपकार-परायण बनायें।

भारतीय वीरांगनाएं

द्वितीय भाग

इस भाग में उन वीर कन्याओं, पत्नियों, और माताओंका चारु चरित्र चित्रित किया है, जिन्होंने अपने पतियों, पुत्रों और भ्राताओं को देश-सेवा के लिये, जाति उत्थान हेतु हृदय के दुलारोंको रणमें जाने के लिये प्रोत्साहित किया था; जिन्होंने संसार के माया मोह और बन्धनों को छोड़कर उन्हें कर्तव्य वेदी पर बलि होने का पाठ पढ़ाया था; जिन्होंने समय आने पर देशके लिये, धर्म के लिये, जाति मर्यादाके लिये आत्मोत्सर्ग के साथ भयंकर रण-चण्डी का रूप धारण कर शत्रु के छक्के छुडाये थे; जिन्होंने अपनी वीरतासे भारतके इतिहासको गौरवान्वित किया और अपने वंश का मुखोज्वल किया था। इस भागमें उन्हीं भव-भय हारिणी, खल-दल-नासिनी, विपुल-बल-शालिनी जगद्वन्द्या करीब २५।२६ भारतीय वीरांगनाओं के चरित्र बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में लिखे गये हैं। हमारा अनुरोध है कि इस पुस्तक को आप अवश्य मंगाइये। मूल्य, अनेक रंग-बिरंगे चित्रों से सुसज्जित पुस्तकका लगभग २)।

पुस्तक मिलने का पता—

एस० आर० बेरी एण्ड कम्पनी

२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

नोट—इस पुस्तक के तृतीय भाग में पंच विदुषी रमणियों के चरित्र होंगे। रंग बिरंगे चित्रों सहित पुस्तक का मूल्य १) होगा।

स्त्री चरित्रका भण्डाफोड़—

रमणी-रहस्य

उपन्यास क्या है, मानो शिक्षाओंका जीता जागता चित्र है। यह पुस्तक हिन्दी साहित्यमें बिलकुल नई, बेजोड़ और अपने ढगकी निराली है। इसकी घटना बड़ी मनोरञ्जक और वर्णन-शैली अत्यन्त हृदयग्राही है। यह आश्चर्यजनक व्यापारोंसे भरा और लोमहर्षण भीषण काण्डोंमें डूबा हुआ इतना दिलचस्प और अनूठा उपन्यास है कि पढते-पढ़ते कभी आश्चर्यित, रोमाञ्चित और कभी पुलकित हो जाना पड़ता है। इसमें चोरी, बदमाशी डकैती, जालसाजी, खून खराबी तथा जासूसी आदि अनेक रोयें खड़े कर देनेवाली घटनायें आदिसे अन्ततक भरी हैं।

इसमें रमणी रहस्यका पूरा भण्डाफोड है, एक ओर प्रेम और सतीत्वकी साक्षात प्रतिमा सुशीला और दूसरी ओर निष्ठुरता तथा जालसाजिनी पथ भ्रष्टा सुन्दरीका चरित्र बड़ीही उत्तमतासे चित्रित किया गया है। दोनोंकी समतामें आकाश पातालका अन्तर है, यह बडीही अद्भुत और विचित्र घटनाओंसे बताया गया है। ऐसी रहस्य भरी और भेद-भरी पुस्तकको पढ़कर लेखक-की लेखनी चूम लेनेको जी चाहता है। हमारी निजी सलाह है कि इस पुस्तकको एकबार अवश्य पढ़ें। लगभग ५५० पृष्ठ और रंग बिरंगे १४ चित्रोंसे परिपूर्ण पुस्तकका मूल्य ३॥) रेशमी जिल्द ४)

अगर कानमें कीड़ा घुस जाय तो मकोयके पत्तेका रस कानमें टपकाओ

हिन्दू समाजका जीता-जागता चित्र—

स्त्रियोंका चरित्र कैसा होना चाहिये, कैसी स्त्रियां आदर्श कहला सकती हैं, गृह-कलहका कैसा भयङ्कर परिणाम होता है, जवान बेटों और युवती पतोहुओंके रहते दूसरा विवाह करनेसे कैसी दुर्गति भोगनी पड़ती है, कन्या-विक्रयका कैसा फल मिलता है। आदि विषय क्रमशः घटनाओंके साथ बड़ी ही सरल भाषामें दर्शाये गये हैं।

इस पुस्तकमें भाभीका ननदके प्रति कुव्यवहार, तहसीलदार का किसानोंपर भयङ्कर अत्याचार, तहसीलदारके पुत्रका देश-प्रेम, उसकी किसानोंके प्रति अपूर्व श्रद्धा, मित्र-प्रेम, पुलिसकी चालें, दहेज या तिलककी कुप्रथासे देश और समाजकी हानि, लीलावतीका अपने माता पिताके प्रति प्रगाढ़ प्रेम, उसके विद्वता पूर्ण विचार, कपटी मित्रोंकी स्वार्थ भरी नीति, पुत्रों और पुत्र-वधुओंके द्वारा विमाताकी डण्डों, जूतोंसे पूजा, अदालतमें रुपयों का धारा-प्रवाह, कन्या द्वारा पिताका तिरस्कार, लीला और सुभद्राका अनन्त प्रेम, तहसीलदारके पुत्र रघुवीर उपनाम प्राण-वल्लभका लीलाके साथ प्रेम-परिणय। आदि उत्तमोत्तम भाव और विषय कूट-कूट कर इस सामाजिक उपन्यासमें भरे गये हैं। अनेक रङ्ग बिरङ्गे चित्रोंके साथ पुस्तकका मूल्य १॥।

उपन्यास जगतका मुकुट मणि—

यह उपन्यास हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक-पं० चन्द्रशेखर पाठककी लेखनीका सर्वश्रेष्ठ नमूना है। मनुष्य जीवनकी सभी घटनाओंका इसमें समावेश है। संसारकी वर्त्तमान परिस्थिति का जीता जागता चित्र है। भारतकी धार्म्मिक, राजनैतिक, *सामाजिक, और गार्हस्थ्य अवस्थाओंका अद्भुत स्वरूप है।* इसमें आपको आदर्श चरित्रोंकी खान, सेवा-भावका खजाना, ग्राम्य-जीवनका सजीव चित्र, कृषकोंकी दुर्दशा, जमीन्दारोंकी ज्यादती आदि सभी विषयोंका बड़ाही रोमाञ्चकारी वर्णन मिलेगा। यदि आपको भारतीय रमणियोंका उज्वल आदर्श, पश्चिमीय शिक्षा प्राप्त ललनाओंका चरित्र, सच्चे और केवल काम वासनाको तृप्त करनेवाले प्रेमका दृश्य, भारतीय ग्रामोंमें फैले हुए कालका विकट चीत्कार और उसके गालमें पड़े हुए ग्राम वासियोंका हाहाकार सुनना और देखना हो तो भारती पढ़िये। सारांश यह कि भारती भारतके उपयुक्त है। भारती भावोंसे भरी है। सुन्दर सुन्दर अनेक एक रंगे तथा तीन रंगे चित्रोंसे सुशोभित ४०० पृष्ठों की पुस्तकका मूल्य २॥।) रेशमी जिल्द ३।)

नित्य प्रात काल सूर्यके सम्मुख थोड़ी देर नंगे बठनेसे कोई

आदर्श माता।

यह एक सामाजिक उपन्यास है। यदि आप आर्यावर्त्तकी आदर्श रमणियोंके आचार-विचार, उनकी देश-रक्षक पुकार, दुर्भिक्षसे तड़पते हुए असंख्य मनुष्योंको प्राणदान, बालकोंकी वास्तविक शिक्षा, सेवककी स्वामि-भक्ति, कट्टर शत्रुका भी आदर आदि अनेक रोमाञ्चकारी दृश्योंके आनन्दका अनुभव करना चाहते हों, यदि आपको ऊंचे दर्जेके दिलचस्प उपन्यास पढनेका शौक हो, तो हम आपको सलाह देते हैं कि, इस उपन्यासको एकबार अवश्य पढ़िये। सचित्र पुस्तकका मूल्य ॥।)

प्रेम पुष्प

यह मानी हुई बात है कि, प्रेम सदा पवित्र है और इसके अन्दर साक्षात भगवानका वास है। प्रेम सागरमें गोता लगाकर जो जितना ढूंढ़ेगा, वह नित्य उतनेही नये-नये आनन्द प्राप्त करेगा। जिस प्रेममें पृथ्वीका कोई भी कलंक लग जाय उसे प्रेम कहना उचित नहीं।

इस पुस्तकमें संसारके सभी प्रेमोंकी पूर्ण रूपसे व्याख्या की गई है। प्रेम इस पुस्तकके वाक्योंमें कूट-कूटकर भरा है। पढ़ते समय ऐसा ज्ञात होता है—मानों चारों ओरसे प्रेम-रूपी अमृतकी वर्षा होरही है। यह पुस्तक स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, युवा सबके देखने और मनन करने योग्य अति उत्तम है। प्रचारार्थ पुस्तक का दाम भी सिर्फ ॥) मात्र रखा गया है।

रुपये कमानेकी मशीन।

इस पुस्तकमें खुशबूदार तेल, साबुन, पोमेटम, लाईमजूस, कास्मेटिक पोमेन्ट, खुशबूदार टिकिया, ओटो, सेन्ट, लवेण्डर, गुलाब जल, कोलन वाटर, फूलोंसे इत्र निकालना, सब प्रकारकी रोशनाइया मारकिङ्ग इन्क, वार्निस, पालिश, पेपर, दांतमञ्जन, खिजाब, सुगन्धित पौडर, ताम्बुल विहार, पानका मशाला, मशालेकी सुपारी, शर्बत, चांदी सोनाकी कलई, काला नमक और अनेक प्रकारकी ताकती और नामर्दीकी धातु-पुष्ट दवा इत्यादि बनानेकी विधिया लिखी गई हैं। इस पुस्तककी प्रशंसा भारतके प्राय प्रत्येक पत्रोंने मुक्त कण्ठसेकी है। जो लोग टके-टकेकी नौकरीके लिये गली-गली मारे-मारे फिरते हैं, वे यदि इस पुस्तकमें बतलायी विधिके अनुसार तेल साबुन इत्यादि बनाकर व्यापार करें तो सैकड़ों रुपया महीना मजेमे पैदा कर सकते हैं। यह पुस्तक अमीरों और शौकनोंके भी बड़े कामकी है। इस पुस्तक द्वारा आज अनेकों सज्जन अपना निजी व्यापार खोल बैठे हैं और काफी आमदनी कर रहे हैं। कितने ही खुद अपने लिये साफ और शुद्ध तेल-साबुन एव दवा बना कर लाभ उठा रहे हैं। हमारा आपसे अनुरोध हैं कि इस पुस्तकको मगाकर आप अपने पास अवश्य रखिये। इस पुस्तकके सहारे आप द्वारा दूसरेका भी भला हो जायगा। शीघ्रता करें, बहुत कम कापिया बची हैं, मूल्य १॥) रेशमी जिल्द २)

अगर बालकके पेटमें मट्टी हो तो पका केला शहदमें मिलाकर खिलाओ

२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

स्वास्थ्य लाभका विचित्र आविष्कार

जल चिकित्सा।

या

हाइड्रो पैथी
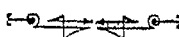
लीजिये! अब आपको वैद्यों, डाक्टरों और हकीमोंका मुंह न ताकना पड़ेगा। उन महाप्रभुओंकी कदम पोशीमें अपने धनका धारा-प्रवाह न करना पड़ेगा। आप स्वत: मिट्टी, जल, उत्ताप (आग या धूप) वायु और आकाशकी सहायतासे जर्मन डाक्टर लुईकूने, विलसन, जस्ट, फादरनिय, अमेरिकन डाक्टर लिण्डलेयर योगी रामचरक और महात्मा गान्धी आदि द्वारा दिखाये हुए पथके आधार पर मामूली सर्दी, बुखारसे लेकर दुसाध्य क्षय-कास, केन्सर, न्यूमोनिया, डिपथोरिया, टाइफायड इत्यादि अनेक भीषण बीमारियोंकी स्वाभाविक चिकित्सा विना दवायी और विना चीर फाड़के सहज ही कर सकेंगे। हजारों प्रशंसा पत्र इस पुस्तक पर प्राप्त हुए हैं। अनेक प्रशंसा पत्र पुस्तकके अन्त में भी दिये गये हैं। पुस्तक प्रत्येक मनुष्योंके लिये उपयोगी है। यदि आप स्वास्थ्यमय जीवन चाहते हैं तो इस पुस्तकको जरूर मगाइये। मूल्य १॥) मात्र।

हरी भांगकी पत्तियां बकरीके दूधमें पीसकर तलवोंमें लगानेसे नींद आ जाती है।

देशकी दयनीय दशाके दो चित्र—

स्वराज्यकी मांग।

इस ग्रन्थमें स्वराज्यके विषयमे देशके बड़े-बड़े नेताओंका भाव व्यक्त किया गया है। बड़ी-बड़ी दलीलों द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि, स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है और साथ ही अनेक युक्तियों द्वारा बताया गया है कि हमको स्वराज्य-संग्राम किस प्रकार चलाना चाहिये। स्वराज्य क्या वस्तु है, वह किन-किन उपायों द्वारा प्राप्त हो सकता है, इसकी आवश्यकता क्या और क्यों है, नेताओंने असहयोग क्यों और कैसे आरम्भ किया आदि सभी बातें इस पुस्तकमें जगत प्रसिद्ध नेताओंके लेखों द्वारा उनकी अपनी ओजस्विनी भाषामें दर्शायी गई हैं, हाफटोनके कई एक सुन्दर चित्रोंसे सुशोभित पुस्तकका मूल्य १॥)

जादूगर।

इस पुस्तकमें उन जादू भरी करामातोंका वर्णन है, जिन्हें पढ़ते ही एक बारगी आपके रोंगटे खड़े हो जायंगे। दिल दहल उठेगा। आप आश्चर्य भरी निगाहोंसे जादूगरके विलक्षण प्रभावको काष्ठवत देखने लगेंगे। देशका ऐतिहासिक चित्र आपके नेत्रोंके सम्मुख नाचने लगेगा। लेखकने जिस परिश्रमसे इस पुस्तककी रचना की है, वास्तवमें वह प्रशंसनीय है। पुस्तक एकबार अवश्य पढ़िये। मूल्य ॥)

केशरको घीमें पीसकर सूंघनेसे आधासीसी नाश हो जाती है।

नाट्य ग्रन्थ-मालाका प्रथम पुष्प—

पाप रेखायें दुःखीके, अश्रुओंसे धुल गई।
चन्द थी आँखें अभीतक हिन्दकी वह खुल गई॥

नाटक क्या है! आजकलका सच्चा चित्र है। इसकी प्रत्येक घटनायें विचित्र हैं। यह नाटक अन्धेरेमें भटकते हुए देशवासियोंको पवित्र मार्ग दिखानेके लिये एक जलती हुई मशाल है। इसके प्रत्येक दृश्य आपको चकित्त कर देंगे और आपके हृदयमें देशानुराग कूट-कूटकर भर देंगे। इसके हास्य-रस युक्त शिक्षाप्रद दृश्य हसाते हंसाते आपकी नस-नसमें देशाभिमानकी बिजली दौड़ा देंगे। इसमें नाट्य कला-कौशलकी भरमार है,यानी यह रंगमंचका श्रृंगार है। नाट्य संस्थाओं और पुस्तकालयोंके लिये वह नाटक बहुतही लाभप्रद है। हिन्द, स्वतन्त्रता, मिष्टर फैशन, नवीनता, सत्यपाल, अत्याचार, दुर्भिक्ष, रोगराज, अन्यायसिंह प्रभृति पात्रोंकी बातें सुन मुर्दा दिलोंमें भी एक विचित्र परिवर्त्तन हो जायगा। बढ़िया एण्टिक कागज पर छपी हुई कई सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित पुस्तकका मूल्य १)

उत्तरकी ओर पैर करके सोनेसे मस्तिष्ककी अवस्था ठीक रहती है।

नाट्य ग्रन्थ-माला द्वितीय पुष्प—

छोड़ घरकी नारी जो, निज कर्मका मारण करें।
क्यों न उनकी नारियां, वेश्या-वृत्ति धारण करें॥

नाटक क्या है? वर्त्तमान समयका चित्र दिखाने वाला अद्भुत चमत्कारिक आइना है। इसके हरएक दृश्य आपका चित्ताकर्षित करेंगे और समयानुकूल बिना रुलाये और हंसाये न रहेंगे। यदि आप सरस्वतीकी पति-परायणता और स्वामि-भक्ति, कमलावतीका धर्म-पालन तथा भ्रातृ स्नेह, हीरालालके वेश्या गमनका नतीजा, दुष्ट अभयचन्द तथा उसके साथियोंका भीषण अत्याचार और अन्त परिणाम, मुन्ना वेश्याका प्रेम-जाल तथा उसके गुप्त विचार, राय भडकचन्द बहादुरके गृहकी विचित्र कहानी, नाटकके नायक रामदासकी कर्तव्य परायणता तथा महान आदर्श स्वामि-भक्ति और उसका पुरस्कार देखना चाहते हों तो एकबार इस पुस्तकको अवश्य अवलोकन करें। अनेक रंग बिरंगे चित्रोंसे सुसज्जित पुस्तकका मूल्य १।) रेशमी जिल्द १॥)

१२—शौचावस्थामें यदि दांतोंको जोरसे बराबर बन्द रखो तो दांत दर्द न हो

नाट्य ग्रन्थ मालाका चतुर्थ पुष्प—

जीतेगा पाप पुण्यको मिथ्या सवाल है।
मुझको लगाये हाथ यह किसकी मजाल है॥
दुष्टोंके लिये युद्धमें, जहरी कटार हूं।
क्षत्रीका रक्त जिसमें, भारतकी नार हूं॥

यदि आप इतिहास प्रसिद्ध राजपूतों और मुसलमानोंके भयङ्कर संग्रामका दृश्य देखना चाहते हों, स्वर्गीय महाराज जसवतसिंहकी राणी वीरांगना महामायाका अद्भुत पराक्रम, विचित्र निर्भीकता, प्रशंसनीय स्वदेश-प्रेम और प्रतिहिंसाकी लहर देखना चाहते हों, यदि आप सम्राज्ञी गुलनारकी कपट भरी चालें. भीमसिंहका भ्रातृ प्रेम और स्वदेश सेवा, मरहठोंका पतन, दुर्गादास और शम्भाजीका घनघोर युद्ध; देशद्रोही खुशामदी श्यामसिंहका चरित्र, बहादुर दिलेरखांके शरीफाना विचार जाना चाहते हों तो आजही इस पुस्तकको मंगाकर पढ़िये। पुस्तकको हाथमें लेते ही वीर रसकी सजीव मूर्त्ति नेत्रोंके सामने जगमगाने लगती है। [illegible] शायरी और उत्तम गायनों तथा रंग विरंगे चित्रोंसे परिपूर्ण पुस्तकका मूल्य १)

शौच गृहमें अधिक देर तक बैठनेसे बवासीर तथा मस्तक सम्बन्धी विकारोंका बड़ा भय है।

नाट्य ग्रन्थ-मालाका पञ्चम पुष्प

गर्दिशसे चन्द्र तेज सितारा नहीं होता।
वीरोंका वीर वाक्य दुबारा नहीं होता॥
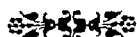
यह वीर रसका अत्यन्त सुन्दर चुह चुहाता हुआ रौद्र रस युक्त नाटक है इसके एक-एक गाने हजारोंमें वाह वाही लूटते हैं। इसके एक-एक शेर हृदयको दहला देते हैं। भाषा और भाव बहुत ही सुन्दर है। यह नाटक कई स्थानोंमें सफलता पूर्वक खेला भी जा चुका है। इसमें उग्रसेनकी उग्रता, शान्ति शेनकी शान्ति प्रियता, कुमार रूपसेन और कुमारी रतिका प्रशंसनीय प्रेम, मंत्री बुद्धि सेनकी कार्य कुशलता, जमानेशाह डाकूकी खुंखारता, उसकी कुटिल चालें पढ़कर आप दंग हो जायेंगे। इसमें मुसलमानोंका भी अच्छा खाका खींचा गया है। इस नाटकका प्रहसन भाग भी बहुत सुन्दर है। स्वार्थविलम्बकी स्वार्थ प्रियता, उनकी पत्नी मिस नैनीकी अगरेजी सभ्यता, मि० गुप्ताकी धूर्तता, नौकर जडबुनियादका चाल चलन देख पढ़कर आप हंसते-हसते लोट पोट हो जायेंगे। शीघ्र मंगाइये। मूल्य १।)

प्रहसन-वाटिका प्रथम पुष्प

प्रेमही एक रत्न है और प्रेममय संसार है।
प्रेमका करते जो आदर, उनका वेडापार है॥

नाटक क्या है? मनोरञ्जनकी पूर्ण सामग्री है। प्रेमकी साक्षात प्रतिमा है। करुण-क्रन्दनका आश्चर्यकारी पर्वत है। अनेक नाट्य गुणोंसे यह नाटक परिपूर्ण है। मिष्टर शेटोका अहकार पूर्ण वर्ताव, निताईको वृद्धावस्थमें शादीकी लालसा, शान्तिका प्रशसनीय प्रेम; रूमाल पर कल्पित आडम्बर, जामिनी नामपर सन्देह कर परस्पर पति पत्नीमे फूटका बीज, नयरा नामक दासीका भीषण षडयन्त्र, अन्तमें रेशमी रूमाल तथा जामिनीका भण्डाफोड आदि दृश्य देखकर आप चकित हो जायेंगे। इस प्रहसनको कलकत्तेकी प्रायः सभी कम्पनियां समय समयपर खेल कर जनताका बहुतही मनोरञ्जन करतीं और साथ ही लाखों रुपए पैदा करतीं है। इसकी छपाई, कटाई और कवरका चित्र ही देखकर आपको दाम वसूल हो जायगा। रंग विरंगे चित्रोंसे सुसज्जित पुस्तकका मूल्य ॥)

पर धोनेसे पहिले यदि मुख धोलिया जाय तो दिमाग कभी कमजोर न होगा।

प्रहसन बाटिकाका द्वितीय पुष्प—

धर्मावतार।

तेरे सीनेमें हिन्दु-धर्मका घुसता छुरा होगा।
बुराई गर करेगा तू तेरे हकमें बुरा होगा॥

*　　*　　*　　*

कहा है वे जो कहते हैं कि हिन्दू धर्म हेटा है।
वही कह दें कि ये मुसलिम है या राक्षसका बेटा है।

धर्मावतारका दूसरा नाम 'लट्ठमार' है। घुरहू चमारका "इही परमेसुरकै माया है" और पं० पवित्राचार्यका "यह भी हिन्दू धरमका ज्ञान है।" नामक पद समय-समयपर बडा ही आनन्द लाता है। इस प्रहसनमें अछूतोद्धारका अनेक सिध्यान्तों द्वारा रोचकताके साथ समर्थन किया गया है। पण्डित पवित्राचार्यका पाखण्ड; घुरहू चमारकी देहाती भाषा तथा उसका हिन्दू धर्म पर आदर्श प्रेम। मुसलमान गुण्डेकी छीछालेदर। आर्य समाज और पवित्राचार्यका शास्त्रार्थ, पवित्राचार्यकी कन्या सुशीलाका जातिच्युत होनेपर घूरहूके साथ जातिके उत्थान का बीडा उठाना और सफलीभूत होना। प्रहसन बडाही मजेदार है, शिक्षाके साथ-हा-साथ इसमें मनोरञ्जन भी कूट-कूटकर भरा है। अनेक रंग बिरंगे चित्रोंसे परिपूर्ण पुस्तकका मूल्य ॥) मात्र।

शौचकेसमय बायें पैर पर जोर देकर बठनेसे अजीर्ण रोग दूर होता है।